—ओ३म्*तत्सत्—

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथीसदा ।
स्वशरीरस्यमेधावी कृत्येष्ववहितोभवेत्

आरोग्यतापद्धतिः

प्रथम—भागः

जिसे

करहलनिवासी

चतुर्वेदी श्रोत्रिय पं०-लक्ष्मीधरशर्मा

वैद्यराज ने

संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों की सहायता
लेकर और उन के यथोचित
प्रमाणों से भूषित कर
हिन्दी भाषा में
सर्वसाधारण के लाभार्थ बनाया

और

सत्यव्रत शर्मा द्विवेदी के प्रबन्ध से
तदीय वेदप्रकाश प्रेस इटावा
में मुद्रित कराया ॥

प्रथमवार १०००]   [मूल्य ।=)

छठवां अध्याय

१०६ पृष्ठ की ९ पंक्ति से १३३ पृष्ठ तक ॥

शुद्धाऽशुद्धपत्र ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		भूमिका	
२	९	शशिनी	शशिनो
८	१७	कमलों में	कर कमलों में
		ग्रन्थ	
४	५	मेरी का	मेरो का
४	२७	सर्वार्थ	सर्वांघ
१६	१	रसवाले	तीखे रसवाले
३३	१	बालकों को	बालकों के
३४	१७	नासाया	नासायां
४१	६	पानवीड़ी	पानड़ी
५४	२२	चक्षुष	चक्षुषः
६९	१९	रहतीन	रहतो है
७०	१२	अहकार	अहंकार
७१	५	सूखा मांस	सूखा भक्ष्य
१०१	३	(मिड़दा)	(मिड़दा
१०१	९	मेदगति	मन्दगति
१०३	१२	ऐसी कसरत	और कसरत
१०३	१६	मानमेयच	गाममेवच

सूचीपत्र

भूमिका ॥

१ पृष्ठ से ८ तक ॥

पहिला अध्याय ॥

१ पृष्ठ से २० पृष्ठ तक ॥

दूसराअध्याय ॥

२१ पृष्ठ से ४६ पृष्ठतक ॥

तीसरा अध्याय ॥

४४ पृष्ठ से ५१ तक ॥

चौथा अध्याय

५२ पृष्ठ से ५९ पृष्ठ तक

पांचवां अध्याय

६० पृष्ठ से १०६ पृष्ठ की ८ पंक्ति तक

श्री:

भूमिका

ब्रह्मादिक देवता, सनकादि मुनीश्वर नारदादि ऋषी-श्वर व्यासादिक विद्वान् जिस की महिमा का पार नहीं पा सकते उस सिरजनहार करतार को अनेकशः नमस्कार है।

उस परब्रह्म परमात्मा को अनेकशः धन्यवाद है कि जिस ने मनुष्य को सब से श्रेष्ठ बना कर उस की रक्षा व सुख के लिये सूर्य, चन्द्र, तारागण, नदी, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि, वृक्ष, वनस्पति, आकरज, हाथी, घोड़ा—गौ बैल, पक्षी आदि स्थावर जंगम सृष्टि की रचा।

पुनः इन सब के लाभालाभ जानने के लिये ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद शास्त्र को उत्पन्न किया॥

आयुर्वेद का प्रचार॥

सब से पहले ब्रह्मा जी ने अथर्ववेद का सर्वस्व लेकर अपने नाम की ब्रह्मसंहिता एक लक्ष श्लोकों में बनाई और उसे महाबुद्धिमान् सर्वकार्यकुशल अपने पुत्र दक्ष प्रजापति को पढ़ाई दक्ष प्रजापति नें सूर्य के पुत्र अश्विनीकुमार नामक दोनों भाइयों को आयुर्वेद अच्छे प्रकार पढ़ाया॥

इन दोनों भाइयों ने " अश्विनीकुमार संहिता " नाम का अत्युत्तम वैद्यक ग्रन्थ बनाया॥

ये दोनों भाई वैद्यक शास्त्र में अद्वितीय विख्यात हुए जिन की प्रशंसा अब तक गान की जाती है॥

यथा

स्वयंभुवः शिरश्छिन्नं भैरवेणारुषाऽथतत् ।
अश्विभ्यांसंहितंतस्मा त्तौजातौयज्ञभागिनौ ॥१॥
देवासुररणेदेवा दैत्यैर्येसक्षताःकृताः ।
अक्षतास्तेकृताःसद्यो दस्राभ्यामद्भुतंमहत् ॥२॥
वज्रिणोऽभूत्भुजस्तंभः सदस्राभ्यांचिकित्सितः ।
सोमान्निपतितश्चन्द्र स्ताभ्यामेवसुखीकृतः ॥३॥
विशीर्णादशनाःपूषो नेत्रेनष्टेभगस्यच ।
शशिनीराजयक्ष्माभू दश्विभ्यांतेचिकित्सिताः॥४॥
भार्गवश्च्यवनःकामी वृद्धःसन्‌विकृतिंगतः ।
वीर्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्यांपुनर्युवा ॥५॥

इत्यादि कर्मों के करने से देवताओं में श्रेष्ठ पूज्यवर और माननीय हुये । इन उपरोक्त अद्भुत अनूठे कर्मों को देख देवराज इन्द्र ने आयुर्वेद के पढ़ने की अभिलाषा से उन से प्रार्थना की । उन महानुभावों ने भलीभांति इन्द्र को वैद्यक विद्या सिखादी । इस प्रकार स्वर्गलोक में आयुर्वेद का प्रचार हुआ ॥

मर्त्यलोक में आयुर्वेद का प्रचार ॥

एक समय मुनि श्रेष्ठ आत्रेय जी (दत्तात्रेय जी) संसारी मनुष्यों को रोगों से पीड़ित और दुःखी देख कर चिन्ता करने लगे कि किस प्रकार से संसार रोग रहित हो यह विचार कर परमधार्मिक परोपकारी श्रीमुनिश्रेष्ठ दत्तात्रेयजी आयुर्वेद पढ़ने के लिये स्वर्गलोक में राजाधिराज देवराज इन्द्र के पास

गये। सुरपति ने शीघ्र ही उठकर उन का आदर सत्कार कर आगमन का कारण पूछा। इन्द्र के ऐसे मधुर वचन सुन महर्षि ने विनय की कि हे ? स्वामिन् आप केवल स्वर्ग के ही राजा नहीं हैं वरन् आप त्रिभुवनपति हैं। आप के संसारी मनुष्य अनेक प्रकार के रोगों से महाक्लेशित हो रहे हैं उन के दुःख से मैं दुःखी हो कर आयुर्वेद पढ़ने के लिये आप की सन्निधि में उपस्थित हुआहूं। कृपया मेरी प्रार्थना को स्वीकृत कीजिये।

परमदयालु सुरपति ने अच्छे प्रकार आत्रेय जी को आयुर्वेद पढ़ाया। मुनि आत्रेय जी ने पृथ्वी पर आके अपने नाम की "आत्रेयसंहिता" रची और अग्निवेश, भेड़, जातूकर्ण, पराशर क्षीरपाणि और हारीत इन छः शिष्यों को पढ़ाकर आयुर्वेद प्रचार के लिये आज्ञा दी इन महानुभावों ने भी अपने २ नामों पर अपनी २ संहिता बना कर वैद्यक का प्रचार करना आरम्भ किया इन संहिताओं का भी आदर अच्छे प्रकार संसार में फैला।

महर्षि समाज

आप लोग विचार सकते हैं कि इतने बड़े भूलोक में इस प्रकार कैसे वैद्यक का प्रचार हो सकता था। यह शोच कर हिमालय की तराई में एक महान् महर्षि समाज हुआ जिस में ब्रह्मज्ञानी, यमी, नियमी, तपस्वी, तेजस्वी, महात्मा, जन जैसे भारद्वाज, अंगिरा, गर्गाचार्य्य, मरीचि, भृगु, भार्गव, पुलस्त्य, अगस्ति, असित, वशिष्ठ, पराशर, हारीत, गौतम, सांख्य, मैत्रेय, च्यवन, जमदग्नि, कश्यप, काश्यप, नारद, वामदेव, मार्कण्डेय, कपिञ्जल, शांडिल्य, कौंडिन्य, शौनक, शाकुनेय, आश्वलायन, सांकृत्य, विश्वामित्र, परीक्षक, देवल, गालव, धौम्य काम्य, कात्यायन, कांकायन, वैजपाय, कुशिक, बादरायण,

हिरण्याक्ष, लौगाक्षि, शरलोमा, गोभिल, वैश्वानर, और बालखिल्यगण, आदि एकत्रित हुए । इस महर्षि समाज में पहिला प्रस्ताव यह हुआ ।

धर्मार्थकाममोक्षाणा मारोग्यंमूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥
प्रादुर्भूतोमनुष्याणा मन्तरायोमहानयम् ।
कःस्यात्तेषांशमोपाय इत्युक्त्वाध्यानमास्थिताः ॥

अतः आप मुनीश्वरों को रोगों से छुटकारा पाने की रीतियां विचार करना चाहिये ।

विचार के पीछे यह निश्चय हुआ कि इस समय देवराज इन्द्र के सिवाय अन्य कोई आयुर्वेद का ज्ञाता नहीं है इस से किसी को उन के पास जाकर रोगों से बचने का उपाय पूछना चाहिये । तत्पश्चात् सर्वसम्मति से भरद्वाज मुनि इस काम के लिये निश्चित किये गये ।

महर्षियों की आज्ञा पाय भरद्वाज जी ने इन्द्र के पास जाकर सारा वृत्तान्त वर्णन किया इन्द्र ने कहा कि जो प्राणी आयुर्वेद के नियमों का यथार्थ पालन करता है वह रोग रहित होने से सहस्रों वर्ष तक निस्सन्देह जी सकता है। अतः आप इस शास्त्र को साङ्गोपाङ्ग मुझ से पढ़िये । यह सुनकर भरद्वाज जी ने थोड़े ही समय में विस्तारपूर्वक आयुर्वेद को पढ़ा और पृथ्वी में आकर उस का प्रचार किया जिस से अनेक ऋषि मुनि और प्राणियों को चिरञ्जीवी बनाया ।

भरद्वाज के चले आने के पीछे इन्द्र ने विचार किया कि भूगोलवासी जन रोगों से दारुण कष्ट भोग रहे हैं और ऋषि मुनि पूर्णरूप तन मन से उन के कष्ट निवारणार्थ चेष्टा भी कर रहे हैं । परन्तु संसार का कोई महान् कार्य विना राजा की

सहायता के अन्य कोई नहीं कर सकता अतएव किसी ऐसे राजा को नियत कर देना चाहिये कि जो तन मन धन से इस महान् परोपकारी कार्य में सहायता पहुंचावे यह सोच विचार कर परमदयालु श्री सुरराज ने धन्वन्तरि से कहा कि हे भगवन् मैं आप से कुछ प्रार्थना करता हूं उसे स्वीकृत कीजियेगा क्योंकि उपकार करने में आप समर्थ हैं। देखिये पूर्वकाल में परोपकार के लिये किस २ ने क्या २ नहीं किया। विष्णु ने अनेक रूप मत्स्यादि धारण कर त्रिलोकी के जीवों की रक्षा की।

॥ परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

अतएव आप पृथ्वी पर अवतार लेकर काशी के राजा हो के मनुष्यों को रोगों से छुटकारा पाने के लिये आयुर्वेद का प्रकाश कीजिये। यह सुन धन्वन्तरि ने इस बात को स्वीकृत कर समस्त आयुर्वेद को इन्द्र से सीख काशी के क्षत्रिय राजा के यहां जन्म ग्रहण किया और उनका नाम दिवोदास विख्यात हुआ जिन्हों ने बाल्यावस्था ही से ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर उग्र तप किया और ब्रह्मासे वरदान पाके काशिराज की पदवी पायी। काशिराज ने जो धन्वन्तरि का अवतारथे धन्वन्तरि नाम की संहिता बना कर अपने शिष्यों को पढ़ाई। जगत् विख्यात काशिराज का यश चहुंओर फैला हुआ देख राजर्षि विश्वामित्र ने अपने प्रिय पुत्र सुश्रुत से कहा कि हे वत्स तुम काशी में जा के काशीनरेश से आयुर्वेद पढ़ कर परोपकाररूप महायज्ञ का अनुष्ठान कर संसार में यशभाजन हूजिये। यह आज्ञा पाय सुश्रुत ने एक सौ ऋषि कुमारों को साथ लेकर काशी को प्रस्थान किया और वहां जाके संसारी जीवों के दुःखों का वृत्तान्त जो रोग से पीड़ित हो रहे थे कह सुनाया और रोगों से छुटकारा पाने के लिये आयुर्वेद पढ़ने की प्रार्थना की ॥

धन्वन्तरि दिवोदास ने सुश्रुत को अग्रगन्ता बना कर वैद्यकशास्त्र का उपदेश किया वे सब भलीभांति उस को पढ़ कर अपने २ घर को सिधारे उन सब में से पहले सुश्रुत ने अपने नाम की सुश्रुत संहिता बनाई पीछे औपधेनव, वैतरण, उरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य, गोपुर रक्षित आदि धन्वन्तरि के शिष्यों ने भी अपने२ ग्रन्थ बना कर प्रचरित किये।

इधर पातालवासी अनन्तदेवने जो चारों वेद उपवेद के ज्ञाता थे पृथ्वी पर पर्य्यटन करते समय मनुष्यों को रोग ग्रसित व अकाल मृत्यु का ग्रास होते देख उन के कष्ट दूर करने के हेतु चररूप (गुप्तरूप) से पृथ्वी पर अवतार लिया इस से उन का नाम चरक हुआ उन्हों ने भी अपने नाम की चरकसंहिता पूर्व तन्त्रों का आश्रय ले कर बनायी ॥

इस परंपरा गति से यह विद्या थोड़े ही समय में सारे संसार में फैल गयी जिस से मनुष्यों का रोगज कष्ट दूर होने लगा। और युगानुयुग तक इस का आदर सर्वत्र होता रहा।

राजा युधिष्ठिर की सभा के राजवैद्य वाग्भट्ट जी ने भी बहुत से वैद्यक ग्रन्थ निर्मित किये जिन में सब से श्रेष्ठ आदरणीय उन की अष्टांगहृदय संहिता जिसे वाग्भट्टसंहिता भी कहते हैं हुई। आज कल वैद्यक के सुश्रुत, चरक और वाग्भट्ट ये ही तीन बृहत्त्रयी ग्रन्थ कहलाते हैं। महाभारत के पीछे समय के हेर फेर तथा अन्यायी अधर्मी राजाओं के ईर्षा द्वेष से उपरोक्त प्राचीन ग्रन्थ ऐसे नष्ट भ्रष्ट होगये कि जिससे भारतीय प्रजा उस अक्षय सुख से रहित होगई जो सब पर विदित है।

परन्तु समय के परिवर्त्तन से जो एक ईश्वरीय नियम है कि सदा दिन एक से नहीं जाते दुःख के पीछे सुख अवश्य ही होता है। इस अभागे भारत के फिर दिन फिरे जिससे हमारी

राजराजेश्वरी श्रीमती महारानी विक्टोरिया इंस की अधी-श्वरी हुईं जिन के राम राज्य में प्राचीन विद्या, कला, कौशलता और चातुरी का पुनर्जीवन हुआ और वह अमूल्य मृत ग्रन्थ सजीव हो दृष्टिगोचर होने लगे। पुनि उन्हीं ग्रन्थों का आश्रय लेकर अनेक पुस्तकें प्रत्येक भाषा में निर्मित हो गईं और होती जाती हैं। ऐसा सुराज्य और सुसमय देख तथा सर्कारी न्यायालयों में नागरी का प्रचार लखि (जिस के धन्यवाद पात्र श्रीयुत महोदय लार्ड मेकडानल हैं) हमारे परममित्र मैनपुरी निवासी श्रीमान् चतुर्वेदी मिश्र दम्मीलाल जी बी. ए. वकील हाईकोर्ट व श्रीयुत राजमान राजश्री ठाकुर उमरावसिंह जी रईस कोटला प्रांत आगरा (जो अब प्रधान मेम्बर कौंसलराज जयपुर के हैं) व प्रयाग निवासी श्रीयुत बाबू छज्जूमल जी एम. ए. मुन्सिफ़ मैनपुरी व आगरा निवासी श्रीमन्त बाबू काशीप्रसाद जी प्रभृति कई मित्रों ने बारम्बार प्रेरणा की कि वैद्यकशास्त्र में तुम्हारा परिचय अच्छी भांति है तथा चिकित्सा करते भी तुम को २५ वर्ष हो चुके हैं इस से नागरी भाषा में एक ऐसी पुस्तक लिखो जिस से मनुष्यों की आरोग्यता स्थिर रहे और रोगों से यथासम्भव बचते रहें।

वैद्यकशास्त्र के अवलोकन से यह प्रत्यक्ष व सिद्ध है और समस्त बुद्धिमान् मानते व जानते भी हैं कि आहार विहार की यथोचित रक्षा रखने से मनुष्य सदैव नीरोग रहता है और अपनी स्वस्थता स्थिर रख चिरंजीवी बनता है अन्यथा इस के विपरीत फल भोगने वाला होता है अतः आयुर्वेद शास्त्र से छांट देशकालानुसार सर्वोपयोगी साधनों को संग्रह कर नागरी भाषा में यह आरोग्यतापद्धति (तरीक़ातन्दुरुस्ती) लिख दो भागों में बांट दी है। पहिले भाग में दिनचर्य्या और

दूसरे भाग में रात्रिचर्य्या, ऋतुचर्य्या तथा कुछ उत्तमोत्तम शिक्षायें भी सम्मिलित करदी हैं और विशेष स्थलों में शास्त्र के प्रमाण भी टिप्पण कर दिये हैं। आशा है कि जो मनुष्य यथोचित इन नियमों का पालन करने में त्रुटि न करेंगे वह सांसारिक सुख भोगने से बंचित भी न रहेंगे ॥ इत्यलम्

करहल
सं० १९५७ विक्रमीय } लक्ष्मीधर शर्मा

समर्पण

श्रीयुक्त रा० रा० श्री कुंवर त्रिभुवनसिंह जी वर्म्मा रईस वनगमां प्रान्त फर्रुखावाद व वर्त्तमान मेम्बर कौंसलराज इन्दौर काशीनरेश दिवोदास, राजर्षि सुश्रुत राजाहर्ष, मदनपाल, नकुल, सहदेव, आदि क्षत्री कुलभूषण इस वैद्यक विद्या के प्रचारक तथा ग्रन्थकारक हुए हैं। यतः आप भी तो इन्हीं महानुभाव आयुर्वेद पारङ्गत क्षत्रिय राजर्षियों के कुल कमलदिवाकर और नागरी हितकारी सुनीति संचारी, गुणग्राही मनोत्साही हैं अतः यह आरोग्यता विषयक पुस्तक आप के कमलों में समर्पित है।

ग्रन्थकर्त्ता

ओ३म् तत्सत्

आरोग्यतापद्धतिः

—:÷*÷:X:※:X:÷*÷:—

पहिला अध्याय

यं शैवास्समुपासतेशिवइति ब्रह्मेतिवेदान्तिनो,
बौद्धाःबुद्धइतिप्रमाणपटवः कर्त्तेतिनैयायिकाः,
अर्हन्नित्यथजैनशासनरताः कर्मेतिमीमांसकाः,
सोयन्नोविदधातुवाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथोहरिः॥
धर्मार्थकाममोक्षाणा मारोग्यंमूलकारणम्।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च॥ १॥

धन्वन्तरि, चरक, सुश्रुत आदि महर्षियों का सिद्धान्त है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थों का मूल कारण आरोग्यता है। और रोग का होना उस आरोग्यता, सुख तथा जीवन का भी नष्ट कर देने वाला है॥

प्रत्यक्ष देखते हैं कि जो मनुष्य स्वस्थ और नीरोग नहीं है वह धर्म करने से वंचित रहता है।

जो मनुष्य रोगी तथा निर्बल है वह परिश्रम द्वारा उद्यम न कर अर्थ को भागी नहीं होता।

जो मनुष्य आरोग्यता नहीं रखता और दिन रात सेज

पर पड़ा खों खों किया करता है। वह कामसुख से रहित हो जाता है ॥

जो मनुष्य स्वस्थ बलवान् नहीं वह विद्योपार्जन शास्त्राभ्यास और सत्संग द्वारा ज्ञान प्राप्ति न कर मोक्षभागी नहीं हो सकता ॥

जब लोक परलोक का साधन आरोग्यता पर ही निर्भर है तो मनुष्यमात्र को उचित है कि स्वास्थ्य रक्षा के लिये जो जो नियम महर्षियों ने लिखे हैं उन्हें विचार कर काम में लावें—

देखो ईश्वर ने सब प्राणियों से अधिक बुद्धिमान् ज्ञानवान् मनुष्य को उत्पन्न किया है तो हम का कर्त्तव्य है कि कामों का लाभालाभ हित अहित समझ के वरते। जब हम को मीठा कडुआ स्वादिष्ठ का ज्ञान है भला बुरा समझते हैं जीवन मरण का लाभालाभ जानते हैं तो फिर भी जान बूझ कर उन्हीं कर्मों को करें जो आरोग्यता के बाधक हैं। तो इस से स्पष्ट प्रकट है कि हमें जीवन अच्छा नहीं लगता। अतएव जो वस्तु या कर्म हमारे लिये हानिकारक हो उन से जहां तक हो सके बचें और लाभकारी हों उन के सेवन करने में त्रुटि न करें ॥

परन्तु आरोग्यता जैसी कि होनी चाहिये प्रायः आज कल दिखलाई नहीं देती। प्राचीन समय के पुरुषों की तुलना से शारीरिक उन्नति में हम लोग बहुत नीचे हो गये हैं और होते चले आते हैं ॥

उस समय के समान उन्नतकाय, विशालवक्षःस्थल सपुष्ट मांसल, आजानुबाहु, दीर्घजीवी दृष्टि नहीं आते रामचन्द्र—रावण—कुंभकरण—भीम—अर्जुन—श्रीकृष्णचन्द्र आदि के बल पराक्रम को सुन कथा के भटा समझ हास्य करते हैं जिस का मुख्य कारण शास्त्र की अनभिज्ञता है ॥

(१) अतः वैद्य का काम है कि उन उपदेशों को करता रहे कि जिन से मनुष्य सदैव नीरोग रहे क्योंकि आरोग्यता की सब को सदा चाहना रहती है जो सब सुखों की जड़ है यूनानी लोगों का भी यही मतहै और कहावतहै कि "एक तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत—" और यही सिद्धान्त अंगरेजी डाक्टरों का है वह भी यही कहते हैं कि "हेल्थ इज्ग्रेटब्लेसिंग" ॥ अर्थात् आरोग्यता एक बड़ी संपत्ति है ॥

(२) वह आरोग्यता यथोचित दिनचर्य्या, रात्रिचर्य्या और ऋतुचर्य्या के नियम पालने से जैसी कि आयुर्वेद में वर्णन की गई है मनुष्य को प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं—

(३) इस लिये धर्म, अर्थ और सुख की साधनभूत आयु की चाहना वाले मनुष्यों को उचित है कि आयुर्वेदीय उपदेशों का जो इस पुस्तक में संग्रह किये गये हैं परमादर करें ॥

दिनचर्या (दिनकाकर्त्तव्ययावर्त्ताव)

प्रातःकाल का उठना ॥

प्रातकाल एक पवन सुहावन—चलत ठंढि उत्तम मन भावन ॥
जो नर जागत उठत प्रभाता—रोग रहित ताके सब गाता ॥
प्रात जागवे के गुण जेते—कहं तक लिखों बहुत हैं तेते ॥
देखहु प्रात होन जब लागत—पक्षीगण सब नरन जगावत ॥

---

(१) मानवायेनविधिना स्वस्थस्तिष्ठतिसर्वदा ।
तमेवकारयेद्वैद्यो यतःस्वास्थ्यंसदेप्सितम् ॥१॥
(२) दिनचर्य्यांनिशाचर्य्यामृतुचर्य्यांयथोदितम् ।
आचरन्पुरुष.स्वस्थः सदातिष्ठतिनान्यथा ॥२॥
(३) आयुष्कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयःपरमादरः ॥३॥ वा०सू०अ०१

बोलत मधुर सुध्वनि आनी—मन भावन प्यारी रस सानी ॥
निज भाषा भाषत हैं पच्छी—मानुषजन कों शिक्षा अच्छी ॥
उठहु सकल जन प्रात भई है—सोवत ही सब रैन गई है ॥
प्रथम लेहु ईश्वर को नामा—जातें सिद्ध होंय सब कामा ॥
पुनि तुम आप विचारो मन में—अवशि काम मेरो का दिन में ॥
कौन किये सब सुधरे काजा—कौन किये विनु होय अकाजा ॥
पुनि तुम आप विचारो मन में—उठहु सम्हारि पहिरि पट तनमें ॥
फिरि उठि देखलेहु निज धामा—विगरो बनो होय जो कामा ॥
उचित होय तैसो फिरि कर हू—उठहु २ मत सोवत पर हू ॥
पक्षी यह विधि नरहिं चितावें—हितकारी सब बैन सुनावें ॥
उठ के वस्त्र पहन जल लैके—हू निश्चिन्त शौच विधि कैके ॥
हाथ पांव मुख धोवो अच्छा—विमल शरीर करहु मन स्वच्छा ॥
मलिन शरीर रहन नहिं पावे—जो सब रोगन को उपजावे ॥
स्वच्छ विमल तन राखत जोई—वाके कबहुं रोग नहिं होई ॥
मलिन वसन अरु मलिन शरीरा—मलिन गेह उपजावत पीरा ॥
याते मलिन कर्म कर दूरी—होउ सबै कल विद्या पूरी ॥
मलिनस्वभाव होतनरजोई—ताकोंनामधरतसबकोई ॥ इत्यादि—

(१) सुखपूर्वक जीवन के अर्थ मनुष्य सदैव ब्राह्ममुहूर्त्त में अर्थात् चार घड़ी रात्रि रहने पर (सूर्योदय से १॥ डेढ़ घंटा पहले) उठे और हाथ मुख धो कुल्ला कर शुद्ध हो अपने पापों की शान्ति के लिये परब्रह्म का स्मरण करे क्योंकि वह समय अत्युत्तम होने से सारी इन्द्रियां शान्त एवं चित्त प्रसन्न रहता है इस हेतु मन भली भांति ईश्वरस्मरण में लगताहै और प्रायः समस्त मतावलम्बी उस समयको ईश्वराराधन की वेला समझते हैं। तत्पश्चात् अपने कर्त्तव्यकार्यको विचार शौचादि क्रियाकरे।

---

(१)ब्राह्मे मुहूर्त्ते बध्येत स्वस्थोरक्षार्थमानवः।
तत्रसर्वार्थशान्त्यर्थं स्मरेद्धिमधुसूदनम्॥ अ०वि०

शौच

(२) शरीर के भीतर अन्तःकरण की शुद्धि सत्याचरण से होती है जैसे सत्य कहने से मन शुद्ध रहता है विद्या और तप से जीवात्मा शुद्ध होता है इसी भांति ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है यह आभ्यन्तर शुद्धि कहाती है। और शरीर के बाहिर मलमूत्र थूक खकार कफ़ लोहू कान नाक का मैल आदि की शुद्धि जल से जैसे हाथ पैर धोना कुल्ला करना स्नान करना आदि बाह्यशुद्धि कहाती है अतएव ये दोनों शौच शरीर रक्षार्थ करना परम आवश्यक हैं—

मलत्याग का समय

(१) प्रातः दिशा (पाखाने) जाने का समय उषःकाल है परन्तु सेज से उठ कर तुरन्त नहीं किन्तु किंचित् ठहर कर जाने से मलत्याग अच्छे प्रकार हो जाता है। और मल त्याग अच्छी भांति हो जाने से आंतों का गूंजना आध्मान पेट का भारीपन दूर हो जाता है।

मल निकलने के समय बहुत बल न करे क्योंकि बल करने से वीर्य्य (जो मूत्राशय के पास ही वीर्य्याशय में बनता है) बल की ऊष्मा से टघल निर्बल हो उसी समय मूत्रमार्ग से निकल

---

(२) अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति १०९
म० अ० ५

(१) आयुष्यमुषसे प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम्।
तदन्त्रकूजनाध्मानोदरगौरववारणम् ॥१॥
आयु० वि० प्र० अ० ३५

जाताहै और उसीसे मन्दाग्नि व विष्टम्भ(कवजियत)होजाताहै।

(बासा पानी पीना)

मल निकालने के लिये किसी प्रकार का स्वभाव न डालना चाहिये जैसा कि बहुतेरे मनुष्य दस्त जाने के पहिले तमाखू फांकते या हुक्का गुड़गुड़ाते या भांगबूटी पीते हैं यह सर्वथा अनुचित है क्योंकि ऐसा करने से मलप्रवाह की स्वयं शक्ति नष्ट हो जाती है परन्तु दिशा जाने से आध घड़ी पहले बासा पानी पीना विशेष गुणकारी होता है।

(२) भिषग्वर भोज लिखते हैं कि सूर्योदय से पहले कुछ अन्धकार रहते आठ अंजुली (या जितनी इच्छा हो और सुख से पी सके बासा पानी पीने से पुष्टता शरीर की कांति (रंगत) बल, उत्साह, जाठराग्नि बढ़ कर पूर्णायु होती है तथा वात पित्त कफ दूषित नहीं होते ॥

(३) भावमिश्र लिखतेहैं कि अर्श (ववासीर) सूजन, संग्रहणी, ज्वर, उदरव्याधि, कोढ़, बुढ़ापा, मुटापा, मूत्राघात, रक्तपित्त, कर्णरोग, गलरोग, शिरोरोग, कटिशूल, नेत्ररोग, तथा पित्तवातकफ क्षतज ये समस्त रोग रात्रि के अन्त में जलपीने से नष्ट हो जातेहैं॥

---

(२) पिबति पर्य्युषितं जलमन्वहं तिमिरिणो चरमप्रहरे यदि॥ पुष्टिवर्णबलोत्साहं वन्हिदीप्तिंकरोति च॥ अम्भसः प्रसृतीरष्टौरवावनुदिते पिबेत्॥ इति भोजः॥

(३) अर्शःशोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकुष्ठमेदोविकारा मूत्राघातास्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिशूलाक्षिरोगाः। ये चान्ये वातपित्तक्षतजकफकृता व्याधयःसन्तिजन्तोस्तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥भावमिश्र॥

सोते से उठ कर तत्काल पानी न पीले किन्तु कुछ ठहर कर पीना चाहिये क्योंकि तत्काल पीने से प्रतिश्याय (नजला) हो जाता है ॥

नासिका द्वारा जल पीना ॥

(१) जो मनुष्य प्रातः उठ कर कुछ ठहर के नित्य प्रति-नासिका द्वारा जल पीता है वह बड़ा बुद्धिमान् और नेत्र-दृष्टि में गरुड़समान. दूरदर्शी होता है और वली (झुलजट्पड़ना) पलित (बालों का श्वेत होना) रोगों से रहित रहता है ।

(२) और भी लिखा है कि तीन अंजुली जल नित्य ना-सिका द्वारा पीने से व्यंग रोग (मुख की श्यामता जिसे झांई कहते हैं) वली पलित पीनस स्वरभंग कास श्वास शोथ आदि रोग नष्ट हो जाते हैं तथा यह रसायन है और नेत्रों की ज्योति को बढ़ाता है ॥

नासिका द्वारा जल पीने की विधि ॥

यह क्रिया कुछ कठिन नहीं है चार छः दिन के अभ्यास से सहल में आ सकती है ।

प्रथम नासिका के मल को निकाल कर जल से धो डाले

---

(१) विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि ॥ स भ-वति मतिपूर्णश्चक्षुषा ताक्ष्यतुल्यो वलिपलित विहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ भावमिश्र ॥

(२) पातव्यंनासयानीरं प्रसृतित्रयमात्रया ।
व्यंगवलीपलितघ्नंपीनसनैःस्वर्यकासशोथहरम् ।
रजनीक्षयेऽम्बुनस्यंरसायनं दृष्टिसंजननम् ॥१॥ भा० मि०

पुनः अंजुली में जल लेकर ऊपर नाक में खींचने या सुड़कने से पानी ऊपर को चढ़ कर छिद्र द्वारा (जो तालू में होकर मुख में है) मुख में आजाता है ॥

अथवा इस के पहले दो चार दिन यह क्रिया करले कि एक विलस्त लम्बा और मोटा सूत का डोरा लेकर उस पर मोम रगड़ले और नासिका के छिद्र में डाल के तालू के छेद होकर मुख में निकाल ले ऐसा करने से डोरे का एक किनारा मुंह में और दूसरा छोर नाक के वाहिर होगा फिर दोनों छोरों को एक २ हाथ में पकड़ कर धीरे २ फेरता जाय इस प्रकार नित्य दो तीन मिनट तक करने से नासिका के भीतरी छिद्र स्वच्छ हो जाते हैं पुनः पानी पीने में कुछ कठिनता नहीं होती ॥

नासिका द्वारा जल पीने से स्वास लेने में बड़ी सहायता मिलती है इसी से यह क्रिया विशेष गुणकारी है ॥

तथा निषेध

(१) स्नेह पान करने वाला—घाव वाला जिस का पेट फूल जाता हो या गुड़ गुड़ाता हो हिचकी आती हों कफ और वात व्याधि में नासिका द्वारा जल नहीं पीवे—

मलमूत्र त्याग का स्थान (पाखाना)

आज कल की भांति अगले समय में सण्डास में दिशा जाने की प्रथा कम थी प्रायः मनुष्य गांव नगर शहर के वाहर जाते थे इसी कारण आवादी में स्वच्छता अधिक रहती थी। और वाहिर जाने के लिये भी बहुत से नियम नियत थे।

---

(१) स्नेहे पीतं क्षते शुद्धा वाध्माने स्तिामतोदरे। हिक्कायां कफवातोत्थे व्याधौ तद्वारिवारयेत् भा० मि०

मूत्र जाने के नियम

(१) मार्ग में राख के ढेर पर गोशाला में मूत्र न करे।

(२) जुती हुई भूमि में जल में, चिता में, पर्वत की शिखर पर जीर्ण टूटे हुए देवस्थान में और वांवी में प्रस्राव (पेशाव) करना मना है क्योंकि मार्ग में करने से वायु दूषित हो कर वहां निकलने वालों को रोग जनक बन जाती है राख के ऊपर करने से राख उड़ती है और कान नाक आंख आदि छिद्रों में जाकर दुःखदाई हो जाती है। गोशाला में करने से स्थान दूषित हो जाता है। जल में करने से जल दूषित होता है। चिता में करने से सुजाक उपदंश उन्माद आदि रोगों के होने की सम्भावना है पर्वत के ऊपर करने से (यदि धूप आदि से वह गर्म हुआ हो तो) मूत्र संबन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं ऐसा कईवार देखा गया भी है।

जुतेहुए खेत में करने से भी खाद के अंश उड़कर इन्द्रिय-छिद्रों में जाते हैं। देवस्थान मेंपेशाव करना असभ्यताहै। वांबी में पेशाव करने से विषैले पदार्थों की भाफ इन्द्री में लगने से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा सर्पादि दुष्ट जीवों के काटने का डर रहता है॥

मलमूत्र करने के नियम

(३) जीवों के रहने के विलों में और मार्ग चलते या

---

(१) नमूत्रंपथिकुर्वीत नभस्मनिनगोव्रजे ॥

(२) नफालकृष्टेनजले नचित्यांनचपर्वते।
नजीर्णदेवायतने न वल्मीकेकदाचन॥

मनुः अ० ४ श्लोक ४६

(३) नससत्त्वेषुगर्त्तेषु नगच्छन्नापिचस्थितः।
ननदीतीरमासाद्य नचपर्वतमस्तके ॥४७॥

खड़े २ और नदी के किनारे मलमूत्र का त्याग न करे—

(४) चलती पवन के सन्मुख प्रज्वलित अग्नि के सामने या विद्वानों के सामने और सूर्य्य, जल, गौ, इन को देखता हुआ भी मलमूत्र न करे ॥

(५) छोटी २ लकड़ियों के टुकड़े मिट्टी के डेले घास पात इन को बिछाकर मलमूत्र करे और उस समय शरीर को सिकोड़ कपड़े से ढक या कपड़ा पहन शिर में कपड़ा लपेट बायें हाथ से अण्डकोषों (पोतों) को मज़बूत पकड़ कर मलमूत्र को त्यागे—

(६) मैदान में दिशा जाने वाला दिन और सन्ध्याओं में उत्तर की ओर मुख करके और रात में दक्षिण की ओर मुख करके बैठे इस का कारण सूर्य के सन्मुख होकर न फिरना है।

चलने या खड़े २ करने में मलमूत्र के छींटे शरीर पर पड़ते हैं और मल भी अच्छी भांति नहीं निकलता।

(७) अग्नि, सूर्य, चंद्रमा, जल, सभ्यगण गौ, पवन इन के

---

(४) वाय्वग्निविप्रमादित्य मपःपश्यंस्तथैवगाः ।
नकदाचनकुर्वीत विरामूत्रस्यविसर्जनम्॥४८॥ म०अ०४

(५) तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्टपत्रतृणादिना ।
नियम्यप्रयतोवाचं संवीताङ्गोवगुण्ठितः ॥४९॥

(६) मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवाकुर्य्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखोरात्रौ संध्ययोश्चयथादिवा ॥५०॥

म० अ० ४

(७) प्रत्यग्निंप्रतिसूर्य्यंच प्रतिसोमोदकद्विजान् ।
प्रतिगांप्रतिवातंच प्रज्ञानश्यतिमेहतः॥५१॥म०अ०४

सन्मुख दिशा पेशाव करने वाले की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

घास पात तिनके ढेले रखने से दुर्गन्धित कण शरीर पर नहीं उटकते—

शरीर को ढकने से दुर्गन्धित कण मलिन नहीं करते परन्तु जो दिशा जाकर तुरन्त स्नान कर डालता हो उस के लिये इस की विशेष आवश्यक्ता नहीं—शिर को लपेटने से मलाशय में गर्मी पहुंच कर दस्त साफ़ हो जाता है शरीर को सिकोड़ कर बैठने से उस समय बल नहीं करने पड़ता तथा अकड़ा हुआ रहने से मलमूत्र शीघ्र निकल जाता है। बोलने से उदरस्थ पवन की ऊर्ध्वगति होने तथा चित्त बढ़ने से मलमूत्र का वेग रुक जाता है।

और अण्डकोषों के दाबने से अण्डवृद्धि का रोग नहीं होता तथा वीर्य्य बनने की शक्ति कम नहीं होती। तथा नदी के तट पर फिरने से जल गन्दा होजाता है।

(८) याज्ञवल्क्य महर्षि का सिद्धान्त है कि तड़ाग आदि जलाशय से दश हाथ की दूरी पर पेशाव और सौ हाथ की दूरी पर दिशा जावे इसी भांति नदी के तट से ४० हाथ के वाद पेशाव और ४०० हाथ की दूरी से दिशा जावे। विचार कर देखने से जान पड़ता है कि अगले समय में नदी तालाव आदि पर कितनी स्वच्छता रक्खी जाती थी कि जिससे पानी गन्दा और मैला न होने पाता था आज कल भी सेनेटरी वाले इस का प्रतिपादन बहुत कुछ करते हैं और इस के विरुद्ध करने वालों को दंड भी देते हैं परन्तु देहात में ऐसा नहीं होता लोग जलाशय के किनारे ही दिशा पेशाव फिरते और उसी में आवदस्त लेते हैं जिस का फल यह होता है कि कभी कभी गांव के गांव नष्ट हो जाते हैं॥

---

(८) दशहस्तंपरित्यज्य मूत्रंकुर्याज्जलाशयात्।
शतहस्तंपुरीषंतु नदीतीरेचतुर्गुणं—या०व०

शौचजल (आबदस्त)

दस्त फिरनें के पीछे गुदा के मार्ग को पहिले मिट्टी के छोटे २ ढेलों से पोंछ कर पुनि जल से धोवे. मिट्टी द्वारा पोंछने से मल की दुर्गन्धि मिट जाती है तथा कृमि होने या अर्श के मस्सों के बढ़ने का भय नहीं रहता और जल की तरावट से गुदा की नाड़ियां स्थिर होजाती हैं इस से शौच के लिये शीतल या ताजा जल काम में लावे। गर्म जल से शौच करने से गुदा की नाड़ियां चंचल रहती हैं जिस से प्रायः गुदभ्रंश (कांच निकलना) और अर्श रोग होजाता है। बहुतेरे मिट्टी के स्थान में कागज काम में लाते हैं परन्तु वह विशेष गुणकारी नहीं—

जिस मनुष्य के अर्श रोग हो वह रेह के पानी से शौच करे या एक लोटे पानी में एक मासा तूतिया पीस कर डाल दे और उसे काम में लावे—गुदा मार्ग की त्रिवली को अर्थात् गुदा की भीतरी ओर को अंगुली डाल जल से अच्छी तरह धोनें से अर्श के मस्से कभी नहीं होते—पुनि जिस हाथ से गुदा को धोया है उसे पवित्र सूखी मिट्टी से मल के जल से धोवे तदनन्तर दोनों हाथों को शुद्ध कर पैरों को भी मिट्टी और जल से स्वच्छ करे।

(१) पैरों का धोना पैरों के मल या मलमूत्र के छींटें जो प्रायः मलमूत्र करने पर पड़ते हैं और पैरों के रोग राति की थकावट (सुस्ती) को दूर कर नेत्रों को तरावट पहुंचाता

---

(१) पादप्रक्षालनंपाद मलरोगश्रमापहम्।
चक्षुःप्रसादनंवृष्यं रक्षोघ्नं प्रीतिवर्द्धनम् ॥
सु० चि० अ० २४

है। (कई बार देखा है कि नेत्रों में जल न पड़ने के समय पैरों के तलवाओं में तरी देने से नेत्रदाह मिट जाता है) पैरों का धोना वीर्य्य बढ़ाने में मदद पहुंचाता है और मन को प्रसन्न करता है तथा राक्षस दोष को नाशता है।

मलमूत्र जाने के पीछे भोजन की—आदि व अन्त में और घूम कर या मार्ग चलने के पीछे सोने से पहिले पैरों का धोना लाभ दायक होता है।

(१) क्योंकि गीले पैर भोजन करने से आयु बढ़ती है। चलने के पीछे धोने से थकावट दूर हो मस्तिष्क व नेत्रों में तरावट पहुंचती है। पांव धोकर सोने से (सोते समय पैर धो कपड़े से पोंछ सुखाकर सोवे) गहरी नींद आती है और दुःस्वप्न नहीं दिखलाई देते ॥

दन्तधावन

(२) शौचानन्तर मुख धो कुल्ले कर बारह अंगुल लंबी और कनिष्ठिका अंगुली के समान मोटी कोमल सीधी गांठ (व्रण) रहित नई डाली की श्रेष्ठ भूमि में उपजे हुए वृक्ष की (सांप की वांवी मर्घट मलमूत्र के स्थान पर के वृक्ष की न हो) दातोन ऋतु और दोष देख (जैसे ग्रीष्म में शीतल वृक्ष की हिमऋतु में गर्म वृक्ष की) काम में लावे।

---

(१) आर्द्रपादस्तुभुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्।

(२) तत्रादौदन्तधावनं द्वादशाङ्गुलमायतम्।
कनिष्ठिकापरीणाह मृज्वग्रथितमव्रणम्।
अयुग्मग्रन्थियच्चापि प्रत्यग्रंशस्तभूमिजम्।
अवेक्ष्यर्त्तुंचदोषंच रसवीर्य्यंचयोजयेत्।
सु० चि० अ० २४

(३) कसैले, कडुवे, मीठे, और रस वाले वृक्षों की (जैसे खैर- बबूल- कंजा- महुआ- नींव- मौरसिरी आदि) दांतोन ग्रहण करे कडुए रस वाले वृक्षों में नींव कसैलों में खैर मधुर रसवालों में महुआ और तीक्षों में करंज वृक्ष अच्छा होता है॥

दन्तधावनक्रिया

(४) उपरोक्त वृक्षों में से किसी वृक्ष की दातौन को ले पानी से धोकर उस के अग्रभाग को दांतों से चबा कर या किसी पदार्थ से कुचल कर कोमल कूर्च (कुची) बना ले पुनि प्रत्येक दांत को दन्तशोधन चूर्ण या किसी मञ्जन युक्त कुची से धीरे २ एक २ दांत को स्वच्छ करे और उस समय इस बात का पूरा विचार राखे कि दांतों के मांस (मसूड़ों) को कष्ट न पहुंचे। वैद्यक शास्त्र के अज्ञाता मनुष्य दांतों और मसूड़ों को कुची से इस प्रकार बल से रगड़ते और दबाते हैं कि जिससे थोड़े ही दिनों में दातों की जड़ निकल कर हिलने लगते हैं बल्कि गिर पड़ते हैं।

दन्तशोधनचूर्ण

(१) सोंठ- मिरच- पीपल को पीस कर शहद में मिलाय

---

(३) कषायंमधुरंतिक्तं कटुकंप्रातरुत्थितः
निंबश्चतिक्तकेश्रेष्ठः कषायेखदिरस्तथा
मधूकोमधुरेश्रेष्ठः करंजःकटुकेतथा॥

(४) एकैकंघर्षयेद्दन्तं मृदुनाकूर्चकेनच।
दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन्॥ सु०चि०अ०२४

(१) क्षौद्रव्योषत्रिवर्गाक्तं सतैलंसैंधवेनच।
चूर्णेनतेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यंविशोधयेत्॥
सु० चि० अ० २४

दांतों से मले या त्रिफला शहद में मले—

(२) सैंधव नमक को पीस कड़ए तेल में मिला कर दांतों को रगड़े—

(३) तेजवल का चूर्ण दांतों से लगावै ।

(४) अरण्य कण्डां की भस्म में कड़आ तेल लगावै ॥

मंजन

(क) खड़िया मिट्टी १) एक तोला स्याह मिरच नग ११ इन को महीन पीस छानले इस के मंजन करने से दांतों की टीसन- मलिनता जाती रहती है ।

(ख) लोधपठानी- फटकरी का फूला- सैंधा नमक इन तीनों को समान भाग लेकर कूट पीस छान ले इस के मंजन करने से दन्तपीड़ा- लोहूका आना वन्द हो जाता है ॥

दन्तधावन के गुण

(२) इस विधि से दन्तधावन करने से मुख की दुर्गन्धि कफ का लिवलिवापन मुख विरसता तथा दांत और जिह्वा के रोग दूर हो जाते हैं। अन्न खाने में रुचि और मन में प्रसन्नता उपजती है॥

दन्तधावन निषेध ॥

(३) परन्तु गलरोग—तालुरोग—ओष्ठरोग—जिह्वारोग—मु-

---

(२) तद्दौर्गन्ध्योपदेहौतु श्लेष्माणंचापकर्षति ॥
वैशद्यमन्नाभिरुचिं सौमनस्यंकरोति च ॥१॥
(३) नखादेद्गलताल्वोष्ठ जिह्वारोगसमुद्भवे ।
अथास्यपाकेश्वासेच कासहिक्कावमीषु च ॥
दुर्वलोजीर्णभक्तश्च मूर्छार्तोमदपीडितः ।
शिरोरुगार्त्तस्तृषितः श्रान्तःपानक्लमान्वितः ।
अर्द्दितोकर्णशूलीच नेत्ररोगीनवज्वरी ।
वर्जयेद्दन्तकाष्ठंतु हृद्रामययुतोपि च ॥ सु०चि०अ०२४

क्षपाकरोग कास स्वास हिचकी—छर्दिरोग वाला दुर्बल अजीर्ण-भोजी मूर्छित मद पीड़ित शिर पीड़ा से दुःखित प्यासा—थका हुआ मद्यपान और ग्लानि से युक्त या जिसे लकवा ने मारा हो या जिस के कान या आंख मे पीड़ा होती हो—नवज्वरी हृद्रोगी पुरुष जब तक अच्छा न होजाय तब तक काष्ठ की दातौन न करे किन्तु केवल दन्तशोधन चूर्ण या अन्य कोई मञ्जन दांतों से मल ले ॥

जिह्वानिर्लेखन (जिभी करना)

(१) दातौन करने के पीछे जीभ के मैल को जिभी से दूर करे वह जिभी सोने, चांदी, या तांबे की होनी चाहिये। या उसी दन्तधावन को बीच से लंबा फाड़ले या अन्य किसी वृक्ष के कोमलपत्ते की बनाले यह जिभी दश अंगुल लंबी, कोमल और चिकनी होनी चाहिये उस से जीभ के मैल को धीरे२ छीले इस के करने से जीभ का मैल, मुख की विरसता व दुर्गन्धता और जीभ का कड़ापन जाता रहता है ॥

अथ गंडूप (कुल्ली करना)

(२) दन्तधावन और जिभी करते समय शीतल जल से बारम्बार कुलकुला कर कुल्ला करने से राति का चिपटा हुआ

---

(१) जिह्वानिर्लेखनं हैमं राजतं ताम्रजं तथा।
पाटितं मृदु तत्काष्ठं मृदुपत्रमयं तथा ॥
दशाङ्गुलं मृदु स्निग्धं तेन जिह्वां लिखेत्सुखम्
तज्जिह्वामलवैरस्यं दुर्गंधजड़ताहरं ॥ २ ॥
(२) गंडूषमपि कुर्वीत शीतेन पयसा मुहुः।
कफतृष्णामलहरं मुखान्तःशुद्धिकारकम् ॥ सु० चि० अ० २४

म दूर होता है तथा मुख भीतर से शुद्ध हो जाता है और प्यास टट जाती है ॥ गुनगुने जल के कुल्ले

(३) गुनगुने पानी के कुल्ले करने से अरुचि कफ–मुख मलिनता जाती रहती है और दांतों की जड़ता जिसे दांत हलाना कहते हैं जाता रहता है और मुख भी हलका हो ता है॥ और विषज मूर्छा–मद–रक्तपित्त–खुश्की को हरता है॥

स्नेहगंडूष

(४) स्नेहगंडूष अर्थात् कटु तेल या मीठे तेल के कुल्ले करने से मुख की विरमता, दुर्गन्धता, शोष (खुश्की) जड़ता सूड़ों की सूजन, दांतों का हिलना–रक्त का आना बन्द हो जाता है एवं दांतों की जड़ अत्यन्त दृढ़ हो जाती है और अन्न खाने में रुचि करता है–गले के पकने और होठों के फटने और रक्तवायु को दूर करता है।

स्नेहगंडूष नित्य न कर सके तो तीसरे चौथे दिन अवश्य ही कर लिया करै ॥ मुखनेत्र प्रक्षालन

(१) वट आदि दूध वाले वृक्षों के क्वाथ से अथवा गौ

---

(३) सुखोष्णोदकगण्डूषः कफारुचिमलापहः।
दन्तजाड्यहरश्चापि मुखलाघवकारकः॥

(४) मुखवैरस्यदौर्गन्ध्य शोफजाड्यहरंसुखम्।
दन्तदार्ढ्यकरंरुच्यं स्नेहगण्डूषधारणम्॥ सु० चि० अ० २४

(१) क्षीरवृक्षकषायैर्वा क्षीरेणाचविमिश्रितैः।
भिल्लोदककषायेण तथैवामलकस्यवा॥ १
प्रक्षालयेन्मुखंनेत्रे स्वस्थः शीतोदकेनवा।
नीलिकांमुखशोषंच पिडिकांव्यङ्गमेवच॥ २
रक्तपित्तकृतान्रोगा न्सद्यएवविनाशयेत्॥

बकली के दूध मिले हुए क्काथ से या लोध के क्काथ से या आँवले के कषाय से या त्रिफला जल से अथवा केवल शीतल जल से जो मनुष्य नित्य मुख और नेत्रों को छींटा देकर स्वच्छ करता है उस के मुख शोष—झाईं—नीलिका—मुहांसे रक्तपित्तज रोग नहीं होते तथा मुख हलका रहता है और नेत्रज्योति स्थिर रहती है ॥

(२) जो मनुष्य दन्तधावन के अतिरिक्त दिन में तीन चार बार ठंढे जल के छींटे मुख और नेत्रों में देता रहता है। या कुल्ले करता है उस को दुःखद नेत्रपीड़ा कदापि नहीं होती ॥

(३) उपरोक्त विधियों से जो मनुष्य गुदादि इन्द्रियों के मल को स्वच्छ करता रहता है उस की मुखकान्ति बढ़ती है बल आता है—चित्त शुद्ध रहता है दरिद्रता (मलिनता) और पाप दूर होते हैं ॥

मलवद्ध

जिस मनुष्य को दस्त खुलकर न आता हो या दो एक दिन खुलकर न आवे और पेट भारी जान पड़े तो सोते समय कोई अति कोमल (मुलैअन) रेचन द्रव्य खाके सो रहे जिस से प्रातः खुलकर दस्त आजाता है। पित्त प्रकृति वाला

---

(२)शीताम्बुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः कालत्रयेण नयनद्वितयंजलेन। आसिंचतिध्रुवमसौनकदाचिदक्षि रोगव्यथाविधुरतांभजतेमनुष्यः ॥१॥

(३)गुदादिमलमार्गाणां शौचंकान्तिबलप्रदम्। पवित्रीकरमाख्यात मलक्ष्मीकलिपापहृत् ॥

सं॰चि॰ अ॰२४

अमलतास या सेवती या गुलाब का गुलकन्द, या इमली का पना, या हड़ का मुरब्बा दो तोला खाले या अमृत हरीत की (जो आयुर्वेदीय औषधालयों में वा वैद्यों से मिल सकती है) खा लेवे अथवा एक या आधी हड़ भून कर रात्रि को चावले और थोड़ा सा पानी पीलेने से दस्त खुलकर आजाता है।

वातप्रकृति वाला लवणपंचकचूर्ण या जवाखार या नौसादरखार या सनाय का चूर्ण या पंच सकारादि चूर्ण खा लेवे इन से भी दस्त साफ हो जाता है या भोजन के थोड़ी देर पीछे छः माशा सोंफ चावने से भी दस्त खुल कर आजाता है।

बहुतेरे मनुष्य सोते समय गर्म २ दूध पीते हैं कि जिस से दस्त खुलासा आजायगा परन्तु यह सर्वथा अयोग्य है क्यों कि वीर्य्यवर्द्धक या वीर्य्यजनक पदार्थ खा, पीकर तुरन्त सोने से वह भली भांति परिपाक न हो प्रातः पतला दस्त लाते हैं या अधिक मल निकालते हैं जिस से मन्दाग्नि हो कर वीर्य निर्बल पड़ जाता है।

इसी प्रकार दस्त हो आने के पीछे तुरन्त पानी पीने से पेट चलने और बहु मूत्र का रोग होने की जड़ पड़जाती है॥

लवणपंचकचूर्ण

सैंधा नमक काला नमक बिड्यापाँगा नमक साम्हर नमक शोरा का पक्का नमक-इन पांचो को समान भाग लेकर कूट पीस छान ले और इसमें से एक या दो मासे खा लेने से दस्त पेशाब खुल कर आ जाता है।

सनाय का चूर्ण

सनाय सात तोले— सोंफ, सोंठ, मुलहटी, काला नमक हड़ बृजवाड़े की वकली, बहेड़े की वकली आंवला ये प्रत्येक

एक २ तोला इन को कूट पीस छान चूर्ण करले मात्रा तीन माषे गर्म जल से लेने से दस्त खुलासा आजाता है ॥

पंचसकारादि

सोंठ, सोंफ, सनाय, हर्र की वकली, सैंधा नमक समभाग ले कूटपीस छान चूर्ण करले मात्रा ४ मासे तक है अधिक विष्टम्भ हो तो गुनगुने जल से लेवें—

अथवा

गुलाब के फूल एक तोला सोंठ तीन माशा दाख मुनक्का ११ दाने इन सब को आधसेर दूध और आधसेर या पावसेर पानी डालके औटाले दूध रह जाने पर छान मीठा डाल रात को पी लेने से प्रातः खुलकर दस्त आजाता है ॥

दूसरा अध्याय ॥

वायु का वर्णन ॥

आर्य्यमहर्षियों ने आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी इन पांचों को तत्त्व अर्थात् समस्त सृष्टि का उपादान कारण तथा जीवधारियों का जीवनभूत सार माना है यह बहुत सत्य है जब ये स्वच्छ मिलते हैं तो प्राणों की रक्षा करते हैं और दूषित होने पर प्राणान्तक वन जाते हैं यथार्थ में जीवन मरण इन्ही पर निर्भर है। इन ईश्वरीय तत्त्वों में सब से अधिक प्राण रक्षा के लिये जैसी पवन आवश्यक है वैसे जल, अग्नि (प्रकाश) आदि नहीं—इसी से हमारे शास्त्र में पवन का नाम जगत्प्राण लिखा है वह सत्य है क्योंकि समस्त जीवधारियों का जीवन होने के कारण यह ठीक जगत्प्राण ही है। इस में कुछ संशय नहीं—अन्न जल विना तो हम कई दिन तक जी सकते हैं परंतु पवन विना एक क्षण भी नहीं—

भरतखण्ड में बहुत से लोग नवरात्रियों में निरशन व्रत धारण कर नौ दिन तक जीते रहते हैं। जैनी लोग कई दिन तक निर्जल व्रत रख कर जीते रहते हैं परन्तु पवन विना कोई जीव जी नहीं सक्ता ॥

जन्म लेने के समय से मरण पर्य्यन्त सोते जागते में स्वांस द्वारा वायु सेवन किया करते हैं। जिस प्रकार मछली कछुये घड़ियाल और दूसरे जलजीव जल में तैरते फिरते हैं उसी प्रकार मनुष्य पशु पक्षी आदि जीव इस वायु सागर में जो सदा सर्वदा शरीर के भीतर बाहर घर बन पर्वत नदी समुद्र आदि सब स्थानों में है मग्न हो रहे हैं।

जैसे शरीर के वाहिर वायु की आवश्यकता है वैसे भीतर भी इसकी बड़ी भारी चाह है। वायु के भीतर ले जाने और निकालने के लिये ईश्वर ने घ्राणेन्द्रिय (नासिका) दी है और उस में यह शक्ति रक्खी है कि जिस से वह सुगन्ध दुर्गन्ध का अच्छे प्रकार ज्ञान कर सक्ती है।

सब स्थानों का पवन एकसा नहीं होता कहीं का शुद्ध और कहीं का अशुद्ध होता है खुले मैदान बन उपवन वाटिका समुद्र और नदी के किनारों की स्वच्छ और ताजी वायु अधिक लाभदायक होती है ॥ इससे जहां दुर्गन्धित वायु मिले वहां स्वास रोक कर लेना चाहिये यदि अधिक देर तक ठहरना होवे तो शनैः २ स्वास लेता रहै परन्तु उस जगह नाक मूंद कर मुख से स्वास लेना सर्वथा अनुचित है क्योंकि वह आरोग्यता की बाधक है।

भीतर वायु जाने के लिये वक्षःस्थल में फेंफड़े लगे हुये हैं जिन के द्वारा स्वासमार्ग से ताजी वायु सदा पहुंचती है और हृदय को जो सब शरीर की राजधानी है बल पहुंचाती है जिससे शरीर की आरोग्यता बढ़ती है। यदि थोड़ी देर भी उस को शुद्ध वायु न मिले तो मनुष्य तुरंत मरजाता है और जो तनिक भी गंदी वायु लगी तो रोगी हो जाता है ॥

स्वास द्वारा जो वायु भीतर जाकर निकलती है वह दूषित हो जाती है तंग व अंधेरे स्थानों में जहां अधिक मनुष्यों के रहने से उनकी स्वास से निकली हुई वायु रोगकारक हो जाती है। वहां न रहना चाहिये दैवात् रहना होवे तो वहां सुगंधित फूल इत्र लोवान कपूर आदि का रखना उचित है। अतः शयनालयों में अधिक मनुष्य या अधिक सामान न रखना चाहिये ॥ बाहिर की अपेक्षा भीतर भी ताजी स्वच्छ पवन जाने की बड़ी भारी आवश्यकता है। और भीतर स्वच्छ

पवन पहुंचाने तथा गन्दी पवन निकालने के लिये प्राणयाम क्रिया से बढ़ कर कोई उपाय श्रेष्ठ आज तक नहीं मिला। योगीश्वर श्रीकृष्णचन्द्र जी का भी यही सिद्धान्त है कि "प्राणायामः परं बलम्" प्राणायाम से परे कोई बल नहीं अर्थात् इस क्रिया से हृदय को पूर्ण बल मिलता है। अतः नित्यप्रति रमणीक स्थान में बैठ कम से कम तीन प्राणायाम करले। इसके करने से भीतरी पर्दे जिन्हें संस्कृत में कंचुक कहते हैं उनको तथा फेफड़ों को बहुत सहायता मिलती है और सारा शरीर कोमल हलका और बलवान् बना रहता है॥

वृक्षों से रात्रि के समय प्राणांतक वायु जिसे अंगरेजी में "कारबोनिकएसिडग्यास" कहते हैं निकलती है इस से रात्रि के समय वृक्षों के नीचे बैठना वा सोना अनुचित है। बहुत से मनुष्य रात्रि के समय उद्यानों में जारहते हैं या शयनालय में बहुत से वृक्षों के फूल पत्तों के स्तबक (गुच्छे) गुलदस्ते या गमले इधर उधर रखते हैं यह सब सामिग्री रोग का घर है॥

दूषित वायु होने के कारण॥

वायु कई प्रकार से और कई कारणों से दुष्ट हो जाती है परन्तु मनुष्यों की स्वास क्रिया इसका प्रधान कारण है। नासिका से जब हम स्वास खैंचते हैं तब तक ही वह पवन बहुत अच्छा और प्राणों का सहायक होता है जब तक भीतर नहीं गया और भीतर जाते ही उसी समय अशुद्ध हो बाहिर निकाला जाता है और वह किसी योग्य नहीं रहता यदि मलिन पवन जिस पवन में मिल जाय तो उस में फिर स्वास लेना विकारी हो जाता है। शुद्ध पवन बार २ स्वास लेने से मलिन होता है जिस की परीक्षा इस भांति कर सकते हैं कि शुद्ध निर्मल जल को खुली जगह में रख कर पंखा करते रहने से वह

ज्यों का त्यों बना रहता है परन्तु मुख से बराबर फूंकते रहने से वह शीघ्र मलिन होजाता है क्योंकि निःस्वास के साथ भीतर से निकली हुई अहितकारी वस्तुयें उस में मिल जाती हैं॥

(१) जब हम स्वास लेते हैं तब वायु फैंफड़े में जाती है और वहां के लोहू को स्वच्छ कर मैलेपन को दूर करती है इस पवन का नाम प्राणवायु है। और भीतर के विष को जिसे अंगरेज़ी में "कारबोनिकएसिडग्यास" कहते हैं साथ ले फिर बाहर निकल आती है इस वायु का नाम उदानवायु है। यही वायु का आना जाना स्वास क्रिया है। इसी प्रकार फैंफड़े का स्याह और दुष्ट लोहू लाल और स्वच्छ होता है जिससे हृदय को बल पहुंचता है॥

जून सन् १७६५ ई० में मुर्शिदाबाद के नब्बाब सिराजुद्दौला के सेनापति माणिकचन्द्र ने कलकत्ते के किले की कोठरी के भीतर जो १२ हाथ लम्बी और छः हाथ चौड़ी थी १४६ अंगरेजों को एक रात्रि बन्द रक्खा जिसकी दशा बहुतों को विदित है उस कोठरी में एक छोटासा झरोखा था कि जिस में से यथेच्छित पवन नहीं मिलती थी और भीतर की पवन निःस्वास वायु से शीघ्र दूषित होगई पुनि उसी दूषित पवन में उनको स्वास लेने पड़ा तो वे व्याकुल हो उसी झरोखे के पास जा २ कर शुद्ध वायु की आशा करने लगे पर क्या होता था अंत में एक एक करके सब के सब गिर २ कर मरने लगे प्रातः होते

---

(१) पवनः प्रतिनियतं प्रविश्य फुफ्फुसंतत्रस्थं शोणितं विशोधयति। अयमेव वायुः प्राणनाम्ना व्याख्यातः। ततस्तस्माद्विषांशमाकृष्यबहिर्निःसरत्युदानअसौस्वासक्रिया ॥ आयु० वि०सू० अ०४८

होते १४६ में से केवल २३ अंगरेज जो मुर्दों की लाशों के ऊपर खड़े हुए झरोखे के पास मुख लगाये हुए थे बच रहे थे शेष १२३ यमपुर सिधारे ॥

(२) वस्तुओं के जलने से भी वायु दूषित होती है ।

(३) खर पात कूड़ा करकट मकानों के पास न रखना चाहिये क्योंकि इनके सड़ने गलने से भी वायु दूषित होती है।

(४) रसोई का धुआं और गली सड़ी वस्तुओं की भाफ और पसीने आदि कई कारणों से घर की पवन दूषित हो कर दुःखदाई हो जाती है। अतएव उस घर में जहां नवीन पवन का ऐसा संचार न रहे जो दूषित वायु को बाहर निकाले, रहना अनुचित है। पवन का शुद्ध करना कुछ कठिन नहीं है क्योंकि दयानिधि परमात्मा ने वायु रूप अमूल्य पदार्थ को बहुत कुछ हमको दे रक्खा है। दूषित वायु अधिक वायु में मिलने से शुद्ध हो जाती है॥ जैसा थोड़ा गन्दा पानी बहते हुए जल में मिलने से शुद्ध हो जाता है ॥

वायु की शुद्धि

(१) दुष्ट पवन जो स्वास के साथ बाहर निकलती है बाहिरी ताज़ी वायु से मिल कर शुद्ध हो जाती है ।

(२) जो दुर्गंध सड़ी गली वस्तुओं से निकलती है उसको बहती हुई वायु उड़ा ले जाती है जिस के कारण पवन ताजी व स्वच्छ रहती है ।

(३) अधिक दूषित हुई वायु को आंधियां शुद्ध करती हैं जिनसे बहुत सा भाग वायु का शुद्ध होता है ।

(४) वृक्षों के द्वारा सदैव वायु शुद्ध होती रहती है क्यों कि उनसे सदैव वायु का बहाव रहता है दिन को वृक्षों से प्राणप्रद वायु जिसे अंगरेज़ी में आक्सिजन कहते हैं बाहर निकलती है जो हम लोगों के सांस लेने में भीतर आती है इससे शुद्ध पवन के मिलने में बहुत सहायता मिलती है।

(५) वायु के स्वच्छ होने में पानी के बरसने से भी बहुत सहायता मिलती है ॥

वायु सञ्चार

नीरोग लोगों की अपेक्षा रोगियों के कारण वायु अधिक दूषित होती है इस लिये विशेष कर रोगियों को स्वच्छ वायु का पूरा विचार होना चाहिये। बहुधा सोने के स्थान में इसका विचार न रखने से बहुत हानि हो जाती है।

ऐसी बैठकों में जहां अंगीठी सुलगाई जाती हैं वहां की वायु शीघ्र गंदी हो जाती है।

जिस स्थान में वायु का बहाव अर्थात् आने जाने का मार्ग न हो वह स्थान बैठने रहने और सोने योग्य नहीं होसकता।

ज्वर और दूसरे कठिन रोगों में रोगी के रहने के स्थान में ताजी वायु का संचार रहना उचित है सांसर्गिक अर्थात् उड़ कर लगने वाले रोगों में (जैसे शीतला- दस्त- विशूचिका- कोढ़ आदि) रोगियों के रहने के स्थान में वायु बहुतायत के साथ आना चाहिये।

सोने के कमरे के किवाड़ खिड़कियों को बिछौने से उठते ही खोल देना चाहिये जिससे वहां स्वच्छ वायु का संचार बना रहे ॥

और रात्रि के निःस्वास से निकला हुआ दूषित पवन तथा पसीने द्वारा निकले हुए विषीले पदार्थ निकल जांय ॥

वायुसेवन

(१) आयु और आरोग्यता रखने के लिये सदैव निवात

---

(१) सुखंवातंप्रसेवेत ग्रीष्मेशरदिमानवः।
निवातंह्यायुषेसेव्य मारोग्याय च सर्वदा १
सु० चि० अ० २४

स्थान में रहे परन्तु विशेष कर ग्रीष्म और शरद ऋतुओं में सूर्य्योदय होने से पहिले कम से कम एक कोस (दो मील) का टहलना अधिक लाभदायक होता है। जो मनुष्य सूर्य्योदय से पहिले उठना चाहे वह रात्रि को सवेरा सोवे क्योंकि रात्रि को देर से सोने में पूरी नींद न आने से प्रातः पलंग से नहीं उठा जाता सूर्योदय के पीछे उठने से शरीर दुबला होने लगता है। शिर पीड़ा नेत्रदाह शरीर का पीला पड़जाना काम करने में निरुत्साह आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं अतः रात्रि का बहुत जागना और अबेरा उठना सर्वथा अयोग्य है॥*

यह केवल अच्छे महात्माओं ही का कथन नहीं है बल्कि सम्पूर्ण भूगोल के वैज्ञानिक समुदाय का सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि प्रातःकाल की स्वच्छ वायु में कोई ऐसी वस्तु होती है कि जिस से सुर्ख खून की तेजी बढ़ती है सारा शरीर तेजस्वी हो जाता है ओठों की रंगत कुंदुरू के समान सुर्ख निकल आती है देह की बनावट सुडौल होने लगती है।

अतः जो मनुष्य दीर्घजीवी हो कर संसार में सुख के साथ आनन्द से जीवन बिताना चाहे या इस जन्म में ही दूसरों के साथ उपकार करना या कोई महान् कार्य करना या अकाल मृत्यु से बच कर वृद्धावस्था में सुख पूर्वक ईश्वर का स्मरण करते प्राण देना चाहे तो प्रण कर नियम के साथ बड़े तड़के उठे सूर्योदय के पहिले घर की रुकी हुई गन्दी वायु में से निकल आयुवर्द्धक फल फूलों की सुगन्धि भरी प्रातःसमय की वायु से अपने शरीर को कान्तिमान् बनावे।

ऐसा अभ्यास करने से थोड़े समय में ही जान पड़ेगा कि इस बरताव से कितना सुखी रह सकता है और अपनी

---

* इस का नमूना देखना चाहो तो रेल के तारबाबुओं का जिन की ड्यूटी रात की होती है दर्शन करलो—

कान्ति तथा फुरती देख कर आश्चर्यित होने पड़ता है शहर वालों की अपेक्षा गांव वालों को अधिक हृष्ट पुष्ट रहने का मुख्य कारण यही सदैव मिलने वाली ताजी वायु है वह शहर वालों की भांति गन्दगी से घिरे नहीं रहते ॥

(२) दिशा शौचादि कर्म से निवट देशकालानुसार स्वच्छ वस्त्र धारण कर शिर पर छोटी हलकी उष्णीष (पगड़ी-टोपी-इमामा) वांध छाता छड़ी हाथ में ले पैरों में पादत्राण (जूता मोज़ा) पहन इष्ट मित्रों के साथ नित्य प्रातःकाल किसी अच्छे वाग वगीचे या स्वच्छ वन उपवन में जाकर टहले--टहलने के समय सम-गति से चले मार्ग में जल्दी २ चलने या अधिक चलने से शरीर में थकावट, कफ़, मेदा (चर्वी) सुकुमारता, बुढ़ापा, और निर्बलता बढ़ती है और बहुत धीरे चलने से भी शीघ्र थकावट आजाती है तथा जी घवड़ाने लगता है। समगति से एक या आधा घंटा घूमकर वायु सेवन करने से आयु, बल, बुद्धि, और जाठराग्नि बढ़ती है और इन्द्रियां चैतन्य हो जाती हैं और कफ़ मेदा दूर हो शरीर में कड़ापन आ जाता है।

(३) टहलने के समय यदि बहुत तेज पवन चलती हो या आंधी गर्दा उड़ता हो तो उस का सेवन न करे क्योंकि ऐसी वायु के सेवन करने से शरीर रूखा पड़ जाता है मुख की

---

(२) अध्वावर्णकफस्थौल्य सौकुमार्य्यविनाशनः। अत्यध्वाविपरीतोऽस्मा ज्ज्वरादौर्बल्य कृच्छ्रसः॥ यत्तुचङ्क्रमणंनास्ति देहपीडाकरंभवेत्। तदायुर्बलमेधाग्नि प्रदमिन्द्रियबोधनम् ॥

(३) प्रवातंरौक्ष्यवैवर्ण्यं स्तम्भकृद्दाहपङ्क्तिनुत्। स्वेदमूर्छाप्रिपासाघ्न मप्रवातमतोन्यथा॥१॥

सु० चि० अ० २४

रंगत बदल जाती है देह के जोड़ों में पीड़ा होने लगती है दाह पाचक शक्ति स्वेद मूर्छा तृषा को दूर करता है और निर्वातस्थान में रहना इस के विपरीत गुण अर्थात् चिकना पन वर्णता इत्यादि करता है ॥ रात्रि के समय विचरना सब प्रकार मना है और जिस स्थान में केश, हड्डी, कांटे, पत्थर तुष, भस्म, मृतक जीवों की खोपड़ियां और अंगार पड़ते हों या मल मूत्रादि कूड़ा कर्कट गिरता हो या वहां पशु मारे जाते हों या जहां की पृथ्वी ऊंची नीची हो और श्मशान चौरा-हा आदि स्थानों में भी टहलना रोगजनक होता है ॥

(१) जो मनुष्य न घूमते हैं और न किसी प्रकार का परिश्रम करते हैं सदा एक स्थान में सुस्तीबन्दर की भांति रहते हैं उन का शरीर कफ़ और मेदा से मोटा व शिथिल हो कर निकम्मा और अति सुकुमार (नाजुक) हो जाता है। जैसे बड़े २ सेठ साहूकार या प्रायः तीर्थों के पण्डे या म-न्दिरधारी गद्दीस्थ महन्त स्वामी गुरू आदि—

धूप और छाया का गुण ॥

(२) धूप में बैठने या चलने से पित्त, प्यास, अग्नि स्वेद मूर्छा, भ्रम और रक्त पित्त बढ़ता है तथा दाह और विवर्णता भी हो जाती है। छाया का सेवन इन सब अवगुणों को नष्ट करता है ॥

पादत्राण ॥

(२) पादत्राण अर्थात् पैरों का रक्षक, मोजा जूता आदि

---

(१) आस्थावर्णकफस्थौल्य सौकुमार्य्यकरीसुखा ॥

(२) आतपःपित्ततृष्णाग्निस्वेदमूर्छाभ्रमास्रकृत् । दाहवैवर्ण्यकारीच छायाचैतान्व्यपोहति ॥

(२) पादरोगहरंवृष्यं रक्षोघ्नंप्रीतिवर्द्धनम् । सुखप्रचारमोजस्यं सदापादत्रधारणम् ॥

हैं परन्तु अगले समय में मोजों के धारण करने की प्रथा कम थी–मोजों के पहरने से पैरों को अधिक सुख मिलता है और कोमल रहते हैं । जूता पहरने से पावों में कोई रोग नहीं होता और बल रहता है चलने में सुख मिलता है पैरों का चमड़ा कोमल रहता है बिवाई आदि किसी प्रकार की बीमारी नहीं होती और न कांटा कंकर लगने का डर या सांप बिच्छू या अन्य दुष्ट जन्तुओं के काटने का भय रहता है और दुष्टों की दुष्टता को दूर करता है और प्रीति को बढ़ाता है सब काल में सुख, पराक्रम को देता है नेत्रों को हित है और आयु को स्थिर रखता है ॥

जूते न पहरने का अवगुण ॥

(३) नंगे पैरों से विचरना आरोग्यता और आयु को नष्ट करता है और शिर में उष्णता पहुंचा के नेत्र रोग वा शिरो रोग करता है ॥

जूता की बनावट ॥

जूता ऐसे पहरे कि जिस की एड़ी कुछ ऊंची हो और न बहुत ढीला हो और न तंग, पंजा ऐसा हो कि जिस में अंगुलियों के नख न घिसते हों और उस के भीतर का चमड़ा कोमल होवे–ऐसा जूता बरसात और शीतकाल में विशेष कर अच्छा होता है । बर्फीले देशों में सब पैर का ढकने वाला जूता अच्छा होता है ॥

---

(३) अनारोग्यमनायुष्यं चक्षुषोरुपघातकृत् ।
पादाभ्यामनुपानद्भ्यांसदाचङ्क्रमणंनृणाम् ॥
सु० चि० अ० २४

पादुका (खड़ाऊं या पौए)

जूते की भांति दिन रात खड़ाऊं पर चलने से मस्तिष्क (दिमाग) रूक्ष होकर बुद्धि को बिगाड़ता है अतः सदैव खड़ाऊं न पहरै॥

छत्री का गुण ॥

(४) छाते से वर्षा ऋतु में मेह से ग्रीष्म में पवन धूल और घाम से और शीतकाल में हिम (सर्दी ओस) से रक्षा होती है। वर्ण नेत्र और ओज को हितकारी तथा सुखकारी होता है॥

उष्णीष (पगड़ी) के गुण ॥

(५) पगड़ी, इमामा, टोपी अर्थात् शिर ढकन का पहरना शुद्ध वर्ण, तेज और बल को बढ़ाता है पवित्र रखने वाला और केशों का हितकारी है परन्तु वह ऐसा हो कि जिस से हवा, धूल और धूप का बचाव होता रहे॥

यष्टि (छड़ी) रखने का गुण ॥

(६) मनुष्य को उचित है कि छड़ी, सोटा बेंत लाठी

---

(४) वर्षानिलरजोघर्म हिमादीनांनिवारणम् ।
वर्ण्यंचक्षुष्यमौजस्यं शंकरंछत्रधारणम् ॥
(५) वाणाचारंमृजावर्णा तेजोबलविवर्द्धनम् ।
पवित्रंकेश्यमुष्णीषं वातातपरजोपहम् ॥
(६) शुनःसरीसृपव्यालविषाणिभ्योभयापहम् ।
श्रमस्खलनदोषघ्नंस्थविरेचप्रशस्यते ॥
सत्त्वोत्साहबलस्थैर्य्यधैर्य्यवीर्य्यविवर्द्धनम् ।
अवष्टंभकरंचापिभयघ्नंदण्डधारणम् ॥
सु० चि० अ० २४

आदि के विना लिये कभी घर से बाहिर न निकले लोकोक्ति भी प्रगट है। "कर्द मर्द को चाहिये छोटी मोटी होय" क्योंकि हाथ में छड़ी रहने से, कुत्ते भेड़िये, सरीसृप (कीड़े मकोड़े) व्याल (सर्पादिक) विषाणा (सींग वाले बैल गाय भैंसे) आदि तथा अन्य २ दुष्ट घातक जीवों से भय नहीं होता। चलने में थकावट अधिक नहीं होती गिरने में सहारा मिलता है बुढ़ापे में अत्यन्त सहायक होती है कमर और हाथ की कलाई में शक्ति रखती है सत्व, उत्साह, बल, स्थिरता, धीरता, और वीर्य्य को बढ़ाती है तथा अवलम्बन कर्त्ता और भय हर्त्ता भी है॥

नस्य (नसवार)

(७) कडुवे तेल या अन्य सुगन्धित तेल का नित्य अभ्यास के साथ प्रातः सूंघने से कफ शांति होता है दुपहर को सूंघने से पित्त और सायंकाल को लेने में वात दोष शांति होता है मुख में सुगन्ध आने लगती है चिहरे पर चिकनापन आजाता है इन्द्रियां स्वच्छ रहती हैं वलीपलित मुख की झांई दूर हो जाती है। परन्तु खेद की बात है कि स्नेह का नस्य छोड़ अज्ञान वश हो महा तीक्ष्ण उष्ण तमाखू आदि से बने हुए हुलास का नस्य लेकर नेत्र ज्योति को नष्ट कर देते हैं और बिपरीत फलभागी बन बैठते हैं॥

---

(७) कटुतैलादिनस्यार्थं नित्याभ्यासेनयोजयेत्। प्रातःश्लेष्मणिमध्यान्हे पित्तेसायंसमीरणे ॥ १ ॥ सुगन्धवदनाःस्निग्धानिस्वनाविमलेन्द्रियाः। निर्वलीपलितव्यङ्गा भवेयुर्नस्यशीलिनः ॥२॥ सु० चि० अ० २४

अथ क्षौर ॥

(१) बालकों को शिर का बीच का भाग जिसे दशमद्वार कहते हैं अंगरेजी में इसी को "ऐनूटीरीयरफोन्टालन" कहते हैं। पन्द्रहवें महीने से लेकर २० महीने तक बन्द हो के पुष्ट होता है तब तक वह स्थान अतिकोमल और पुलपुला रहता है इसी कारण दो वर्ष तक बालक का मुण्डन वर्जित है महर्षियों ने इसी से तीसरे वर्ष में मुण्डन कहा है।

तदनन्तर प्रति पाचवें दिन नख और डाढ़ी मूंछ शिर के बालों को कटवावे।

(२) बाल और नख कटवाने से पाप का नाश होता है हर्ष हलकापन सौभाग्य और उत्साह बढ़ता है।

प्रथम डाढ़ी का बनवाना सोलहवें वर्ष में कहा है और इसी भांति पांवों के नखों का कटवाना भी इसी समय में अच्छा और लाभकारी होता है क्योंकि कम अवस्था में पांव के नख कटवाने से दृष्टि में अंतर पड़ जाता है डाढ़ी मूंछ या शिर के बाल कटवाके स्नान करना चाहिये क्योंकि बाल बनवाने के समय जो बाल शरीर पर उड़कर पड़ते हैं उन का मुख में चले जाने का भय रहता है और मुख या गले में चिपट जाने या चुभने से बहुत दुःख होता है और पुनि निकलने में कठिनता होती है और कभी २ नहीं निकलता तो रोग जनक बन जाता है।

---

(१) पञ्चरात्रान्नखश्मश्रु केशरोमाणिकर्तयेत्।
केशश्मश्रुनखादीनां कर्तनंसंप्रसाधनम् ॥१॥
(२) पापोपशमनंकेश नखरोमापमार्जनम्।
हर्षलाघवसौभाग्य मुत्साहंचाविवर्द्धयेत् ॥
सु० चि० अ० २४ ॥

क्षौर कृत्य के पीछे तत्काल ठंडे पानी से शिर को धोने से वाल नेत्र और दांतों को हानि होती है अतः उस समय तेल लगा के शिर धोने या स्नान करने से हानि नहीं होती है।

आर्य्य ऋषियों ने चौल कर्म में इसी कारण मक्खन और शीतोष्ण जल से क्षौर कराना लिखा है।

मृतकशुद्धि में भी जब भद्र अर्थात् डाढ़ी मूंछ समेत शिर के वाल बनवाते हैं उस समय विना तेल खल लगाये स्नान नहीं करते।

(२) नासिका के वाल उखाड़ने से शीघ्र ही नेत्रों की दृष्टि मन्द हो जाती है अतः उनको भूल कर भी कभी न उखाड़ें।

डाक्टर कर्क अपनी पुस्तक "ह्यूमनफ़िजिओलजी" में लिखते हैं कि नासिका के वालों से वायु के दूषित पदार्थ जो छिद्र द्वारा भीतर को जाते हैं रुक रहते हैं अतः वायु स्वच्छ होकर फेफड़ों में जाती है। इस से उन्हें न कटवावे और न उखाड़े॥

अञ्जन

(३) मुख धोने से मुख नेत्र हलके होजाते हैं और आंखों

---

(२) उत्पाटयेत्तुरोमाणि नासाया न कदाचन।
तदुत्पाटनतोदृष्टेर्दौर्बल्यंत्वरया भवेत् ॥ १ ॥

(३) मुखंलघुनिरीक्षेत दृढंपश्यतिचक्षुषा।
मतंस्रोतोंजनंश्रेष्ठं विशुद्धंसिन्धुसंभवम् ॥
दाहकण्डूमलघ्नञ्च दृष्टिक्लेदरुजापहम् ॥
अक्ष्णोरूपावहंचैव सहते मारुतातपौ।
न नेत्ररोगाजायन्ते तस्मादञ्जनमाचरेत् ॥

सु० चि० अ० २४

से दूढ़ दीखता है इस से उस समय नेत्रों में अंजन नित्य लगावे कहावत भी है ।

दांत का मंजन आंख का अंजन नितकर नितकर नितकर ।
बातबतक्कड़ कान में लक्कड़ रात को मतकर मतकर मतकर ॥

इसलिये काले सुरमे का अंजन जो समुद्र से निकलता है बहुल हितकारी होता है इसके लगानें से जलन खुजली मल (कीचड़) चिपचिपाहट और पीड़ा जाती रहती है और उन में रूप आजाता है और वायु धूप सहने के योग्य होजाती हैं तथा किसी प्रकार का नेत्ररोग नहीं होने पाता इस से अञ्जन लगाना हित है ॥

परन्तु आज कल मनुष्य इसे "शृङ्गार" व असभ्यता समझ नहीं लगाते पुनि थोड़े दिनों में नेत्रहीन बन संसार को शून्य समझने लगते हैं ॥

इस से वह सभ्यजन सन्ध्यासमय अंजन लगाया करें तो भी अच्छा है क्योंकि उस समय के लगाने से प्रातःकाल तक नेत्र स्वच्छ होजाया करेंगे जिससे उन के मत से असभ्यता नेत्रों में दिखलाई नहीं पड़ेगी । **रसाञ्जन ॥**

(३) मनुष्य के नेत्र तेजोमय हैं और उन को विशेष कर कफ से उत्पन्न होनेवाली बीमारियों से भय रहता है इस से उन में पानी निकालने के लिये प्रति सातवीं रात (रसौंत†) सोने के समय आंखों में लगाना चाहिये ॥

---

(३) चक्षुस्तेजोमयंतस्य विशेषात् श्लेष्मणो भयम् । योजयेत् सप्तरात्रेऽस्मात् स्रावणार्थं रसांजनम् ॥ वा० सू० अ० २

† रसौंत दारुहल्दी के क्वाथ और बकरी के दूध से मिलाकर बनाया जाता है वह श्रेष्ठ होता है अन्यथा अडूसे आदि से बना अच्छा नहीं ॥

अञ्जन लगाने का निषेध ॥

(१) जिसने भोजन कर लिया हो शिरसे स्नान किया हो अथवा सवारी पर चढ़ने से थका हुआ हो या जो रात्रि में जगा हो या जिसे ज्वर आ गया हो वमन किया हो—वह उस समय अञ्जन न लगावे।

अभ्यङ्ग ॥

(२) वाग्भट्ट जी लिखते हैं कि शरीर में तेल नित्य मलवाने से पुष्टता बढ़ती है यदि सर्वांग में न मलवा सके तो विशेष कर शिर व कान और पैरों में तो अवश्य ही मर्दन करवावे।

शीत काल में तो नित्य और अन्य ऋतुओं में सप्ताह में कम से कम दो दिन तेल मर्दन करावे—

(३) तेल मर्दन करने से कफ और बात रुक जाते हैं धातु पुष्ट होती है शरीर का बल और वर्ण बढ़ता चला आता है थकावट दूर होती है सुख मिलता है नींद अच्छी भां-

---

(१) भुक्तवान्शिरसास्नातः श्रांतश्छर्दनवाहनैः ।
रात्रौजागरितश्चापिनाञ्ज्याज्ज्वरितएवच॥ चि.सु.अ.२४

(२) अभ्यङ्गंकारयेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषुपुष्टिदम् ।
शिरःश्रवणपादेषु तंविशेषेणशीलयेत् ॥ वा० सू०

(३) अभ्यङ्गोमार्दवकरःकफवातनिरोधनः ।
धातूनांपुष्टिजननो मृजावर्णबलप्रदः ॥
जलसिक्तस्यवर्द्धन्तेयथामूलेऽङ्कुरास्तरोः ।
तथाधातुविवृद्धिर्हिस्नेहसिक्तस्यजायते ॥
सु० चि० अ० २४

ति आती है स्नायु सिरा धमनी और त्वचा कोमल रहती हैं आयु को बढ़ाता है और त्वचा के रोग दाद खाज सिंहुआ फोड़ा फुंसी आदि स्वप्न में भी नहीं होते और शरीर बली सुन्दर और फुर्तीला तरुण समान बना रहता है। और छोटे२ कीड़े जो प्रायः रोगों के जन्म दाता होते हैं उत्पन्न नहीं हो सकते। सुश्रुत जी का सिद्धांत है कि वृक्ष की जड़ में जल देने से जैसे उस के अंकुर बढ़ते हैं उसी भांति तेल मर्दन करने से मनुष्य की धातु बढ़ती हैं।

(४) माधवाचार्य्य लिखते हैं कि अन्न से अठगुना गुण आटा में है और आटे से दशगुना दूध में और दूध से अठगुना मांस में और मांस से अठगुना घी में और घी से अठगुना गुण तेल में है। इन सब वस्तुओं के खाने में गुण है परन्तु तेल के मर्दन ही में गुण है ॥

शिर में तेल लगाना ॥

(५) शिर में तेल लगाने से शिर के सब रोग दूर हो जाते हैं केश कोमल लम्बे सघन चिकने और काले हो जाते हैं शिर की तृप्ति त्वचा और मुख में सचिक्कणता ज्ञानेन्द्रियों

---

(४) अन्नादष्टगुणंपिष्टंपिष्टाद्दशगुणंपयः।
पयसोऽष्टगुणंमांसंमांसादष्टगुणंघृतम् ॥
घृतादष्टगुणंतैलंमर्दने न तु भक्षणे।
(५) शिरोगतांस्तथारोगान्शिरोभ्यंगोऽपकर्षति।
केशानांमार्दवंदैर्घ्यं बहुत्वंस्निग्धकृष्णताम् ॥
करोतिशिरसस्तृप्तिं सुत्वक्त्वमपिचाननम्।
संतर्पणंचेन्द्रियाणांशिरसःप्रतिपूरणम् २ सु०सू०अ०२४

में प्रसन्नता होती है और शिर का रूखा होने से बाल कम पकता है तथा निद्रा सुखपूर्वक आती है ॥

अतः मनुष्य को तेल द्वारा शिर की रक्षा करना उचित है क्योंकि समस्त शरीर का उत्तम अंग और जीवन का मुख मस्तिष्क इसी शिर में है जिस के बल से बल बुद्धि पराक्रम पुरुषार्थ और आयु की वृद्धि होती है ॥

शिर में तेल लगाकर स्नान करना ॥

(१) तेल मर्दन कर स्नान करने से नसों के मुख रोम कूप और धमनी तृप्त होकर शरीर में बल बढ़ जाता है ॥

केशरक्षा (प्रसाधनी कंघी)

केशों की रक्षा तेल डालने धोने स्वच्छ रखने और कंघी के झाड़ने से होती है । केशों में तेल इतना न डाले जो हर समय टपकता रहे बल्कि किंचित् डाल कर मर्दन अधिक करे तदनन्तर धो डालने से चिकनाई छूट जाती है पुनि कंघी से झाड़दे । इनके झाड़ने का समय अनियत है आवश्यकता होने पर स्वच्छ करले परन्तु विशेष कर तेल डालने और स्नान करने के पीछे या कहीं चलने के समय कंघी से झाड़ले ॥

(१) कंघी से नित्य बालों को इंछने से मैल धूल जंतु दूर होकर बाल बढ़ने लगते हैं और शोभा बढ़ती है ॥

जिन के बाल बड़े हों उनको खुला न रखना चाहिये क्योंकि खुले रहने से खाने पीने के पदार्थों या शरीर पर गिरने की सम्भावना रहती है तथा बढ़ते भी नहीं हैं ॥

---

(१) सिरामुखैरोमकूपैर्धमनीभिश्चतर्पयन् ।
शरीरबलमाधत्तेयुक्तःस्नेहोऽवगाहने॥सु॰चि॰अ॰२४

(१) केशप्रसाधनीकेश्यारजोजन्तुमलापहा। सुश्रुत

कंघी आबनूस या उत्तम वृक्ष की या भैंस के सींग की अच्छी होती है ॥

कर्णरक्षा व कर्णपूरण ॥

(२) मनुष्य को नित्य या "दूसरे तीसरे दिन„ कान में तेल डालना चाहिये क्योंकि कान में तेल डालने से कान की झिल्ली (पर्दा) तर रहती है जिससे कर्ण रोग उत्पन्न नहीं होते और कान में मैल भी अधिक नहीं जमता मन्या* ज-बूकड़ी में रोग उत्पन्न नहीं होते और न मनुष्य ऊंचा सुनता है और न कभी बहरा होता है ॥

कर्णमैल को कभी तृणका सलाई आदि से कदापि नहीं छेड़े । उसके छेड़ने से कान का पर्दा कमज़ोर होजाता है और उसके फटने वा बिगड़ने का डर रहता है । कान में मैल अ-धिक हो जाने पर थोड़े से पानी में किंचित् साम्हर नमक घिसकर डालदे इस से वह फूल जाता है पुनि आधी छटांक गुनगुने पानी में ५ रत्ती सोडा डाल के इस की पिचकारी कान में देने से स्वच्छ हो जाता है ॥

(२) रसादिक (स्वरस) भोजन के पहिले और तेल आदि सूर्यास्त के समय कान में डालना उचित है ॥

---

(२) नकर्णरोगानमलंनचमन्याहनुग्रहः ।
नोच्चैःश्रुतिर्नवाधिर्यंस्यान्नित्यंकर्णपूरणात् ॥

* गर्दन के पीछे की सिरा को मन्या कहते हैं इसी में प्रायः सर्दी गर्मी लू लगती है ॥

(२) रसाद्यैःपूरणंकर्णोभोजनात्प्राक्प्रशस्यते ।
तैलाद्यैःपूरणंकर्णोभास्करेस्तमुपागते ॥

तैल व्यवस्था ॥

(३) पिचकारी में, पीने में, अन्न संस्कार में, नस्य में, आंख कान के पूरण में, सेक और अभ्यंग में तिल का तेल श्रेष्ठ होता है।

(४) शरीरमर्दन या शिर में डालने के लिये सरसों का तेल या अन्य सुगन्धित तेल या फूलों से वसाया हुआ तेल या चन्दनादि सुगन्धित तेल दूषित नहीं होते नारियल का तेल शिर में डालने से केशों का हित है परन्तु शिर में एक प्रकार की दुर्गन्ध आने लगती है*

(१) बुद्धिमान् को उचित है कि प्रकृति साम्य ऋतु देश दोष और विकार के अनुसार अभ्यंग और सेक में घी या तेल काम में लावे ॥ मधूकादि तेल ॥

(२) महुआ, क्षीरकाकोली, चीड़, देवदारु, मोथा इन

---

(३) वस्तौपानेन्नसंस्कारेनस्येकर्णाक्षिपूरणे ।
सेकाभ्यङ्गावगाहेषुतिलतैलंप्रशस्यते ॥
(४) सार्षपङ्गंधतैलंचयत्तैलंपुष्पवासितम् ।
अन्यद्द्रव्ययुतंतैलंनदुष्यतिकदाचन ॥ सु० चि० अ० २४

* एक सेर नारियल के तेल में छः मासे इत्र संतरा मिला देने से उसकी गंधि दूर हो जाती है।

(१) तत्रप्रकृतिसाम्यर्तुदेशदोषविकारवित् ।
तैलंघृतंवामतिमान्युञ्ज्यादभ्यङ्गसेकयोः ॥
(२) मधुकंक्षीरशुक्लाचसरलंदेवदारुच ।
क्षुद्रकंपञ्चनामानंसमभागानिसंहरेत् ॥
तेषांकल्ककषायाभ्यांचक्रतैलंविपाचयेत् ।
सदैवशीतलंजन्तोर्मूर्द्धनितैलंप्रदापयेत् ॥ इ० चि० अ० २३

पांचो को समान भाग लेकर इन्हीं के कल्क और कषाय से कोल्हू से निकले हुए तेल को पकावे तदनन्तर ठंडा होने पर सदैव शिर में डालने से विशेष गुण करता है ।

सुगन्धादि तेल ॥

केशर, लौंग, ये आधा २ तोला मोंथा, बुरादा चंदन, कपूरकचरी, बालछड़ छरपुरी, कपूर, पान बीड़ी इलायची, बड़ी ये प्रत्येक एक २ तोला इन सब को तीन पाव पानी में बांट पीस छान तीन पाव मीठे तेल में मिलाकर मंदाग्नि से सिद्ध करले पुनि छान कर शीशी में रख छोड़े इसको शिर में डालने से केश लंबे सचिक्कण श्याम होते हैं और पलित को रोकते हैं और प्रतिश्याय (नजला) को नहीं करने जैसा कि चमेली बेला आदि के तेलसे होता है ।

अभ्यङ्ग का निषेध ॥

(१) आम सहित दोषों में अभ्यङ्ग न करावे तरुण ज्वर और अजीर्ण वाले को भी अभ्यंग न करावे क्यों कि इसमें तेल लगाने से व्याधि कृच्छ्र साध्य होकर असाध्य हो जाती है । वमन, विरेचन और निरूह वस्ति वाले के भी तेल न लगा-

---

(१) केवलंसामदोषेषुनकथञ्चनयोजयेत् ।
तरुणज्वर्य्यजीर्णीचनाभ्यक्तव्यौकथञ्चन ॥१॥
तथाविरिक्तोवान्तश्चनिरूढोयश्चमानवः ।
पूर्वयोःकृच्छ्रताव्याधेरसाध्यत्वमथापिवा ॥
शेषाणांतदहःप्रोक्ताअग्निमान्द्यादयोगदाः ।
सन्तर्पणसमुत्थानांरोगाणांनैवकारयेत् ॥

सु० चि० अ० २४

वे क्योंकि ऐसा करने से अग्नि मंद हो जाती है। संतर्पण से उत्पन्न हुए रोगों में अभ्यंग कदापि न करै ॥

(२) वाग्भट्ट जी कफ वाले रोगी को भी अभ्यंग का निषेध करते हैं ॥

उद्वर्त्तन (उबटना)

तेल मलने के पीछे या बिना अभ्यंग के उद्वर्त्तन करने से तैल की ऊपरी चिकनाई और त्वचा का मैल दूर हो जाता है।

(१) उद्वर्त्तन वात कफ और मेद को दूर करता और बल वीर्य्य को देता और लोहू को बढ़ाता है और इससे त्वचा कोमल और संतुष्ट रहती है।

(२) केवल मुख पर लेप कर उबटना करने से नेत्रों की दृष्टि दृढ़ तथा कपोल पुष्ट होते हैं और मुख की श्यामता और पिडका (मुहासे) दूर होकर कमल पुष्प समान प्रकाशित और कांतिमान् मुख हो जाता है।

चिरोंजी को पीस कर उबटना करै—या भुने हुए चने का आटा हल्दी तेल मिला कर उबटना करना भी अच्छा है—अथवा पीली सरसों को दूध में उबाल कर पीस ले इसके उबटने से

---

(२) वर्ज्योऽभ्यङ्गःकफग्रस्तकृतसंशुद्ध्यजीर्णिभिः ॥

वा० सू० अ० २ श्लो० ६

(१) उद्वर्त्तनंकफहरमेदोघ्नंशुक्रदम्परम् ।
बल्यंशोणितकृच्चापित्वक्प्रसादमृदुत्वकृत् ॥१॥
(२) मुखलेपाद्दृढञ्चक्षुःपीनगण्डंतथाननम् ।
अव्यङ्गपिडकंकान्तंभवत्यम्बुजसन्निभम् ॥ २ ॥

सु० चि० अ० २४

खुजली देह की मिट जाती है—साबुन का लगाना भी उद्वर्तन कहा जाता है।

उद्घर्षण और उत्सादन ॥

(१) उद्घर्षण (रगड़ना) और उत्सादन (लेप करना) करने से नाड़ियों के मुख खुल जाते हैं जिससे त्वचागतशक्ति तेज हो जाती है स्त्रियां जो बहुधा हाथ पांव मुख आदि अंगों को रगड़तीं और उनपर लेप करती रहतीं हैं इस से उन का शरीर विशेष कांतिवाला और आनन्द सौभाग्य पवित्र हलका आदि शुभगुण युक्त हो जाता है॥

(२) उद्घर्षण करने से खाज, कोढ़, बातव्याधि दूर हो जाती है और गोड़ों में शीघ्र सुख को उपजाता है। तथा स्थिरता और लाघवता को करता है और त्वचागत अग्नि को तेज़ कर नाड़ियों के मुखों के द्वारा पसीना को निकालता है

ईंट के झँवा या अन्य प्रकार झँवा से पैरों का रगड़ना खाज़ कोढ़ का नाश करता है तथा नींद दाह श्रम पसेव को खोता है ॥

---

(१) शिरामुखविविक्तत्वं त्वक्स्थस्याग्नेश्चतेजनम्
उद्घर्षणोत्सादनाभ्यां जायेयातामसंशयम् ॥
उत्सादनाद्भवेत्स्त्रीणां विशेषात्कान्तिमद्वपुः ।
प्रहर्षसौभाग्यमृजालाघवादिगुणान्वितम् ॥
उद्घर्षणं तु विज्ञेयं कण्डूकोठानिलापहम् ।
ऊर्वोःसञ्जनयत्याशु फेनकःस्थैर्य्यलाघवे ॥
कण्डूकोठानिलस्तम्भमलरोगापहश्चसः ।
तेजनं त्वग्गतस्याग्नेःशिरामुखविरेचनम् ॥
उद्घर्षणं त्विष्टिकया कण्डूकोढविनाशनम् ।
निद्रादाहश्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम् ॥ सु० चि० अ० २४

॥ तीसरा अध्याय ॥

व्यायाम अर्थात् कसरत के वर्णन में ॥

आरोग्यता और शरीर में दृढ़ता रखने के लिये व्यायाम मनुष्य के लिये परमावश्यक है। प्राचीन समय में भारतवासी इस विद्या में निपुण होने से नीरोग साहसी, बली, बुद्धिमान् और पराक्रमी होते थे परन्तु समय के हेर फेर से व्यायाम करने की परिपाटी सभ्यसमाज से जाती रही प्रायः मनुष्य इस कृत्य को निकृष्टतर समझ कर कहते हैं कि क्या कसरत सीख कर हम को पहलवानी करना है। तथा फरीगदका आदि कसरत को वदमाशी का उद्यम समझ नाम तक नहीं लेते। पहलवान इस कृत्य को जीविका समझ उदर पूरणार्थ इधर उधर राजदर्बार में मारे २ फिरते हैं ॥

व्यायाम का पुनः प्रचार ॥

जब से प्रजाहितकारिणी श्रीमती राजराजेश्वरी ने समस्त भरतखण्ड की पाठशालाओं में इस का प्रचार कराया है और समस्त कक्षाओं के विद्यार्थियों को कसरत करने की आज्ञा दी है तब से पुनि लोगों की रुचि इधर होती जाती है।

व्यायाम ही के प्रताप से यूरोपियन लोग हृष्ट पुष्ट भले चंगे बली पराक्रमी दीखते हैं उन में कोई भी ऐसा न होगा जो थोड़ी या बहुत कसरत न करता हो—

व्यायाम की उत्पत्ति और आवश्यक्ता ॥

व्यायाम एक स्वाभाविक साधन है जो जीव मात्र में स्वभावतः होता ही है देखो बच्चे जन्मते ही अपने हाथ पांओं को अधिक तर हिलाते रहते हैं और ज्यों ज्यों बड़े होते

जाते हैं त्यों त्यों दौड़ने भागने उछलने और कूदने आदि खेलों में लगा रहना पसंद करते हैं। इसी से उनका सर्वांग भली भांति पलता पोषता रहता है और वे सदा चैतन्य फुर्तीले रहते हैं। और जो बच्चे किसी कारण उक्त खेलों से वंचित रहते हैं वह सदैव निर्बल रोगी और शोकित दिखलाई पड़ते हैं।

गौ बैल हाथी घोड़े आदि पशु बंधे रहने पर भी उछलते कूदते हिलते और झूमते रहते हैं। चिड़िया तोता मैना आदि पक्षी पिंजड़ों और दर्शनागारों (अजाइब घरों) में बंद रहने पर भी फुदकते और फड़फड़ाते रहते हैं।

सिंह रीछ आदि वन पशुभी अपना बहुत सा समय चलने फिरने कूदने फांदने में व्यय करते हैं।

अतः—व्यायाम को अपना प्राकृत तथा मुख्य कर्त्तव्य समझ नित्य करना चाहिये क्योंकि व्यायाम न करने से शरीर में पुष्टता और शक्ति कदापि नहीं आ सकती-चाहे वह दिन रात मोती ही क्यों न खाया करे।

व्यायामी पुरुष को वन रण अगम्य मार्ग पहाड़ तथा कठिन स्थल और शत्रुओं से भय कम रहता है और एकाएकी कोई रोग या बुढ़ापा उसे घेर नहीं सकता।

व्यायाम के भेद और गुण ॥

(१) जिस कर्म के करने से शरीर में श्रम उपजे उस कर्म को व्यायाम कहते हैं। अत एव चलना, फिरना, दौड़ना, कूदना फांदना, कुस्ती लड़ना, वृक्षों पर चढ़ना, पानी में तैरना, डंड पेलना, मुद्गर हिलाना, नाल उठाना, पदार्थों का फेंकना, बोझ उठाना, फरी, गदका, बनैठी आदि करना, लेजम हिलाना, चांदमारी करना, तीर लगाना, घोड़े ऊंट आदि की सवारी करना

(१) शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम् ॥

इत्यादि भारत वासी खेल तथा किरकिट, फुटवाल, लोनटेन्स इत्यादि २. अंगरेजी खेल और करतब ये सब व्यायाम में गिने जाते हैं।

(२) व्यायाम के करने से देह में सुख और शरीर के चारोंओर से आनन्द की प्राप्ति होती है शरीर की बनावट सुधर त्वचा कसकर मांस में झोल नहीं पड़ती अर्थात् कैसा ही मोटे से मोटा क्यों न हो कसरत करने से अवश्य उस की वे ढंगी मुटाई कम हो जाती है ऐसे ही कैसा ही दुवला क्यों न हो उस के भी कुछ न कुछ मुटापा आ ही जाता है अतः शरीर

---

(२) तत्कृत्वातुसुखंदेहंविमृद्नीयात्समंततः ॥१॥
शरीरोपचयःकान्तिर्गात्राणांसुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यंस्थिरत्वंलाघवंमृजा ॥२॥
श्रमक्लमपिपासोष्णाशीतादीनांसहिष्णुता।
आरोग्यंचापिपरमंव्यायामादुपजायते ॥३॥
नचास्तितसदृशंतेनकिञ्चित्स्थौल्यापकर्षणम्।
नचव्यायामिनंमर्त्यंमर्दयन्त्यरयोभयात् ॥४॥
नचैनंसहसाक्रम्यजरासमधिरोहति।
भवन्तिशीघ्रंनैतस्यदेहेशिथिलतादयः ॥५॥
स्थिरीभवतिमांसञ्चव्यायामाभिरतस्यच।
वयोरूपगुणैर्हीनमपिकुर्यात्सुदर्शनम् ॥६॥
व्यायामंकुर्वतोनित्यंविरुद्धमपिभोजनम्।
विदग्धमविदग्धंवानिर्दोषम्परिपच्यते ॥ ७ ॥

सु० चि० अ० २४

सुन्दर सुडौल पुष्ट और कांतिवान् जहां जैसा चाहिये वहां वैसा बन जाता है अंग प्रत्यंग विभक्त हो जाते हैं और अवस्थारूप गुण इन से हीन पुरुष भी व्यायाम सेवन से अति रूपवान् बन जाता है और देह में शिथिलता शीघ्र नहीं आती और न झट पट बुढ़ापा घेर सकता है। एवं अग्निदीप्त शरीर में फुरती, स्थिरता, लाघवता तथा ऋजुता रहती है और श्रम, ग्लानि प्यास सर्दी गर्मी आदि सहन शक्ति और परम आरोग्यता की प्राप्ति होती है। और विदग्ध या अविदग्ध विरुद्ध अन्न निर्विकार पच जाता है ॥

व्यायाम का निषेध ॥

(१) सुश्रुत जी लिखते हैं कि रक्तपित्ती, कृश, शोषी कास स्वासी, क्षणी, भोजन किये हुये, स्त्री प्रसंग से क्षीण और भ्रमयुक्त मनुष्य कसरत नहीं करे ॥

व्यायाम कितने समय तक करे

(१) शिशिर और वसन्त ऋतुओं में जितना बल हो उतने समय तक करना चाहिये परन्तु अन्य ऋतुओं में अर्द्ध

---

(१) रक्तपित्तीकृशःशोषीस्वासकासक्षतातुरः ।
भुक्तवान्स्त्रीषुचक्षीणोभ्रमार्त्तश्चविवर्जयेत् ॥

(१) व्यायामोहिसदापथ्योबलिनांस्निग्धभोजिनाम्
सचशीतेवसन्तेचतेषांपथ्यतमःस्मृतः ॥१॥
वयोबलशरीराणिदेशकालाशनानिच ।
समीक्ष्यकुर्य्यात्व्यायाममन्यथारोगमाप्नुयात् ॥२॥
सर्वेष्वृतुष्वहरहःपुंभिरात्महितैषिभिः ।
बलस्यार्द्धेनकर्त्तव्योव्यायामोहन्त्यतोऽन्यथा ॥
सु० चि० अ० २४

बल से नित्यप्रति व्यायाम करना हित है अन्यथा करने से मर जाता है।

मनुष्यों को उचित है कि अपनी अवस्था शरीर बल देश समय और आहार देख व्यायाम करें पुरुषों को अपेक्षा स्त्रियों को कम और हलकी कसरत करना चाहिये और विशेष कर मासिक धर्म पर या गर्भावस्था में बहुत कम और थोड़ी कसरत बड़ी सावधानी से करना चाहिये। क्योंकि ऐसी दशा में व्यायाम न करने से ऐसी हानि नहीं होती जैसी कि विपरीत करने से हानि पहुंचती है।

अर्द्धबलपरीक्षा

(२) जब कसरत करने से हृदय स्थित पवन मुख में प्राप्त हो जाय और स्वास को शीघ्र२ चलाने तथा फेंफड़ों को बहुत फुलाने लगे और मुख में खुश्की पैदा करदे तब अर्द्धबल हो जाता है उस समय कसरत बन्द करदे ॥

(३) अथवा ललाट, नाक, शरीर के जोड़ और कोखों में कसरत करने से पसीना आ जावे तब अर्द्धबल समझ लेवें ॥

अति व्यायाम ॥

(४) अधिक कसरत करने से या अधिक कसरत करने पर पौष्टिक पदार्थ कम खाने से क्षय, त्याम, अरुचि—छर्दि, रक्तपित्त—भ्रम, ग्लानि, कास—शोष स्वास ज्वर ये रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥

---

(२) हृदिस्थानस्थितोवायुर्यदावक्त्रंप्रपद्यते ।
मुखंचशोषंलभतेतद्बलार्द्धस्यलक्षणम् ॥२॥
(३) किंवाललाटेनासायांगात्रसन्धिषुकक्षयोः ।
यदासञ्जायतेस्वेदोबलार्द्धन्तुतदादिशेत् ॥ २ ॥
(४) क्षयस्तृष्णारुचिश्छर्दीरक्तपित्तभ्रमक्लमाः ।
कासशोषज्वरस्वासाअतिव्यायामसम्भवाः ॥ ३ ॥
सु० चि० अ० २४

व्यायाम का समय ॥

व्यायाम करने का उत्तम समय अभ्यंग के पीछे और स्नान के पहिले का है परन्तु इस में समय अधिक लगने से पहलवानों और सावकाशी मनुष्यों को ठीक होता है । विद्यार्थी और उद्यमी पुरुषों के लिये स्नान के पश्चात् और भोजन से पहिले का ठीक होता है । इस के अतिरिक्त और समय भी व्यायाम का हो सकता है बड़ी कसरत प्रातःकाल होनी चाहिये और जब चलने की कसरत करै तो बीच २ में कुछ आराम भी कर ले, दौड़ने की कसरत भी प्रातः उत्तम होती है ।

व्यायामविधान ॥

(१) व्यायाम को अपना कर्त्तव्य समझ नित्यप्रति नियम के साथ करना चाहिये ॥

(२) न्यारे २ प्रकार की तथा शरीर को कम थकानेवाली कसरत अधिक लाभदायक होती है ।

(३) जहां स्वच्छ और ताजी पवन आती हो वह खुला हुआ स्थान व्यायाम के लिये उत्तम होता है परन्तु बहुत तीक्ष्ण या अति शीत पवन से सदैव बचाव रखना चाहिये ।

(४) व्यायाम करते समय लंगोट, जांघिया, धोती, विरजिस आदि वस्त्र को कसकर बांध लेने से इन्द्री फोतों में विकार हो जाने का भय नहीं रहता

(५) व्यायाम के पीछे तत्काल लंगोट आदि वस्त्र खोलने से फोतों की बीमारी का भय रहता है

(६) व्यायाम के पीछे तुरन्त स्नान करने से शरीर के जोड़ निर्बल पड़ जाते हैं ।

(७) कसरत के पीछे झटपट पानी पीने से उदरव्याधि होने की संभावना रहती है अतः कुछ पौष्टिक पदार्थ खा के पानी पीवे ॥

(८) भोजन करने पर या खाली पेट कदापि कसरत नहीं करै ।

(९) बहुत से मनुष्य कुछ खा पी कर कसरत करते हैं या कसरत करते जाते हैं और दूध हलुआ या भींगे चना खाते पीते जाते हैं यह सर्वथा हानिकारक होता है क्योंकि उस समय स्वास फूली हुई और शरीर की ऊष्मा ऊपर रहती है ॥

(१०) कसरत इस रीति से करै कि देह के सब अंगों को हरकत पहुंच जाय ॥

(११) सब प्रकार की कसरतों को आरम्भ में और अन्त में धीरे २ करना चाहिये ॥

(१२) ऐसी कड़ी या अधिक कसरत कभी न करना चाहिये कि जिस की थकावट रात के विश्राम से भी दूर न हो ।

(१३) स्निग्ध भोजन करने वाले और बलवान् पुरुषों के लिये व्यायाम सदैव हित होता है विशेषतः शीतकाल और वसंत ऋतु में तो अत्यन्त हितकारी होता है ॥

(१४) शरीर को सुडौल बनाने के लिये सबसे उत्तम कसरत दंड बैठक के अतिरिक्त नित्य प्रातः दो तीन मील भ्रमण करना है क्योंकि चलने में शीघ्र २ स्वास लेने से अधिक वायु स्वास के साथ भीतर जाती है और उस से रक्त स्वच्छ होकर हृदय को बल पहुंचाता है पुनः शरीर के सब अंगों में रक्त का अधिक संचालन होने से सर्वांग बढ़ते हैं और शरीर के व्यर्थ अंश निकल जाते हैं तथा चलने से पांव दृढ होते हैं भूख ठीक समय पर खूब लगती है और उस से किया हुआ भोजन तुरन्त पच जाता है अतः उत्साह बढ़ता रहता है ॥

(१५) व्यायाम करते समय जहां तक सम्भव हो स्वास के रोकने का अभ्यास करै किन्तु स्वास को मुख बन्द कर नासिका द्वारा निकालने से बहुत लाभ होता है ॥

(१६) कसरत करने के पीछे पांवों को लपेड़ २ कर चलने से शरीर की ऊष्मा तथा पट्ठे स्वस्थ हो कर बल को देते हैं ॥

पादाभ्यंग (पैरो का मर्दन)

(१) पैरों के तलवों में तेल मर्दन करने से स्थिरता होती है नींद खूब आती है नेत्रों की ज्योति बढ़ती है पैर सोते नहीं और चलने में थकावट नहीं होती और पैरों की त्वचा कोमल रहती है जिससे पैर फटते नहीं ॥

(२) कसरत से थके हुए या क्षीण शरीर वाले मनुष्यों के निकट पादाभ्यंग करने से कोई रोग नहीं आता जिस प्रकार कि गरुड़ के पास सर्प नहीं आता है ॥

---

(१) पादाभ्यङ्गश्चतत्स्थैर्यं निद्रादृष्टिप्रसादकृत्
पादसुप्तिश्रमस्तम्भ संकोचस्फुटनप्रणुत् ॥
(२) व्यायामक्षुण्णवपुषं पद्भ्यांसम्मर्दितं तथा ।
व्याधयोनोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः ॥

सु० चि० अ०

॥ चौथा अध्याय ॥

स्नान के विषय में

स्नान करने की आवश्यकता

जिस प्रकार अच्छे नगरों में स्वच्छता के लिये गन्दे नाले होते हैं उसी प्रकार सिरजनहार करतार हमारे शरीर रूपी नगर में नाले रूपी सात लाख छिद्र रक्खे हैं उन में बहुत से तो इतने छोटे हैं कि जिन्हें हम आंखों से देख नहीं सक्ते उन छिद्रों में से प्रति क्षण पानी पसीना सदैव बहा करता है परीक्षा से ज्ञात हो चुका है कि दिन रात में कई सेर पानी पसीना भाफ द्वारा शरीर से निकलता है और उसके साथ प्रति दिन छः मासे से अधिक विषीली वस्तु भी निकलती है उन नालियों का मुख त्वचा के धो डालने से खुलता है और मैल से रुकता है कि जिस के रुकने से दुष्ट वस्तुएं ठीक तौर पर निकल नहीं सक्तीं। इस से स्नान करना विशेष लाभदायक होता है। मैल के शरीर में लगे रहने से या विषोले पदार्थों के रुकने से खाज फुन्सी पिती कुष्ठ आदि त्वचागत रोग उपजते हैं।

जैसे पानी बरसने से वृक्ष धुल जाते हैं और उनको तरी पहुंच हरे भरे दृष्टि पड़ने लगते हैं। पानी बरसने से पृथ्वी धुल जाती है और उस का कूड़ा कर्कट बह जाता है वैसे ही स्नान करने से शरीर धुल कर रोमकूप खुल जाते हैं जिस से शुद्ध वायु शरीर के भीतर जाती और गन्दी वायु निकलती रहती है जिस से शरीर पुष्ट होता है। इस में संदेह नहीं कि स्वच्छता आरोग्यता की जड़ है और मलिनता रोगों का आ-

गार है और प्रायः विशूचिकादि मारक रोग इसी मैलेपन से फैल कर गांव के गांव नष्ट कर देते हैं। जब हम देखते हैं कि पक्षी अपनी चोंच से परों को साफ़ करते हैं बिल्ली अपने बालों को जीभ से चाट २ कर गर्म और स्वच्छ रखती है तो क्या हम को (मनुष्यों को) जिन्हें परमेश्वर ने सब प्राणियों से अधिक बुद्धिमान् बनाया है स्वच्छता रखना पसन्द न हो।

जो मनुष्य बाहरी बनावट कपड़े आदि को तो स्वच्छ रखते हैं परन्तु शरीर को मलिन, वह सर्वथा आरोग्यता के घातक हैं।

अतः नित्य स्नान करना स्वास्थ्य का एक अंग माना गया है॥

स्नान के गुण

(१) वाग्भट्ट जी लिखते हैं कि स्नान के करने से जठराग्नि दीपन होती है वीर्य्य आयु ओज बल बढ़ता है शरीर की खुजली मैल—थकावट—स्वेद दुर्गन्धि—तन्द्रा प्यास दाह मन की ग्लानि दूर होती है॥

(२) स्नान करने से देह के ऊपर की गर्मी शरीर के भीतर आकर तुरन्त ही जाठराग्नि को दीपन कर देती है। यही कारण है कि बहुधा मनुष्यों को जब तक स्नान न करें भूख मालूम नहीं होती परन्तु स्नान करते २ क्षुधा लग आती है।

दीपनंवृष्यमायुष्यं स्नानमोजोबलप्रदम् ।
कण्डूमलश्रमस्वेद तन्द्रातृट्दाहपाप्मजित् ॥
वा० सू० अ० २

(२) बाह्यैश्चसेकैशीताद्यैरूष्मान्तर्यातिपीडितः।
नरस्यस्नानमात्रस्य दीप्यतेतेनपावकः॥
आयु० सू० अ० ३५

स्नान करने का समय

नीरोग और बलाभिलाषी पुरुषों के लिये सब ऋतुओं में सूर्य्योदय के समय स्नान करना विशेष गुणकारी होता है। इसी भांति रोगी और निर्बल मनुष्यों को कुछ दिन चढ़ने से मध्यान्ह तक ऋतु अनुसार स्नान करना उत्तम माना गया है। गर्मी में तीनवार स्नान करना विशेष लाभदायक होता है ॥

शीतोष्ण जल का स्नान

(३ ठंडे जल से स्नान करने से रक्तपित्त के विकार शान्त होते हैं वैसे ही गर्म जल से स्नान करने से बल बढ़ता है और वात कफ के विकार शान्त होते हैं।

(४) कमर से नीचे भाग पर उष्ण जल से स्नान करना बलदायक होता है और कमर से ऊपर के भाग पर ठंडा जल डालना श्रेष्ठ होता है और शिर पर गर्म पानी डालना केश और नेत्रों के बल को हरता है परन्तु वात कफ के कोप में रोग के बलाबल को जान कर गर्म जल से शिर का स्नान चिकित्सा काम में लावे—

---

(३) शीतेनपयसास्नानं रक्तपित्तप्रशान्तिकृत्।
तदेवोष्णेनतोयेन बल्यं वातकफापहम् ॥ १ ॥
आयु० सू० अ० ३५

(४) उष्णाम्बुनाधःकायस्य परिषेकोबलावहः।
तेनैवचोत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम् ॥१॥
उष्णेनशिरसःस्नानमहितं चक्षुषःसदा।
श्लेष्ममारुतकोपेतु ज्ञात्वाव्याधिबलाबलम्।
काममुष्णंशिरःस्नानं भैषज्यार्थंसमाचरेत् ॥
वा० सू० अ० २

(५) गर्म ऋतु में अधिक गर्म जल से स्नान करने से रक्त पित्त का विकार बढ़ता है इसी प्रकार शीतकाल में अति ठंडे या बासे पानी से स्नान करने से कफ वात कुपित होते हैं। अतः समय और शरीर दशा देख टटका ठंडा या उष्ण जल स्नान के लिये काम में लावे परन्तु इस बात का ध्यान सदैव रहे कि कैसा ही शीतकाल क्यों न हो पर गर्म जल शिर पर कदापि न डाले ॥

स्नानविधिः

(१) स्नान करते समय सदैव पहिले हाथ पांव और मुख धो कर कमर से नीचे स्नान कर के पीछे शिर से स्नान करना उचित है।

(२) झटपट नहाने की अपेक्षा मलमल कर जल से शरीर धो कर स्नान करना अधिक उपयोगी होता है।

(३) स्नान करते समय शरीर को ठंडी हवा से बचाना उचित है।

(४) जब शरीर गर्म हो तो ठंडा और जब ठंडा हो तब गर्म पानी काम में लाना चाहिये।

(५) जल में कभी २ थोड़ा निमक मिला कर स्नान करने से त्वचा स्वच्छ होती है (नमक इतना हो कि जिस सें पानी खारी न हो जाय)!

(६) शिर धोना—पांव धोना—हाथ धोना—पिंडली धोना और कमर तक का स्नान पांच मिनटसे तीस मिनट तक बहुत है॥

(७) पानी में बैठ कर स्नान करना २० मिनट से अधिक न होना चाहिये।

---

(५) अत्युष्णमुष्णकालेच पित्तशोणितवर्द्धनम्॥
सु० चि० अ० २४

(८) गोता मार कर या धार बांध कर एक या दो मिनट से अधिक स्नान न करना चाहिये। परन्तु जब जल बहुत शीतल न हो तो पांच मिनट से दश मिनट तक स्नान कर सकते हो ॥

(९) ठंडे पानी में अधिक देर तक ठहरने से हानि होती है॥

(१०) जब बहुत गर्म या बहुत ठंडा पानी हो तो बहुत कम समय तक स्नान करना उचित है।

(११) सब अवस्थाओं में जल के अधिक गर्म या ठंडे होने के विचार से या समयानुसार कम या देर तक स्नान करना चाहिये ॥

(१२) रोगी अपनी सामर्थ्य के अनुसार बिना शिर को भिंगोये स्नान करे अथवा गीले कपड़े से देह को पोंछ ले।

(१३) गर्म जल से सदैव बन्द मकान में जहां पवन का बहाव न हो स्नान करै।

स्नाननिषेध

(१) अतीसार—ज्वर—कर्णपीड़ा—वातव्याधि आध्मान (पेट का फूलना) अरुचि—अजीर्ण इन रोगों में स्नान न करे।

(२) बहुत भोजन से या अधिक पान से जब पेट भरा हुआ हो तब स्नान न करै।

(३) जब तक भोजन किये पूरे तीन चार घंटे न हो जांय तब तक कभी स्नान न करना चाहिये ॥

(४) जब शरीर पसीना युक्त हो या अति ठण्ढी पवन चलती हो या शरीर किसी कारण से गर्म हो तो भी स्नान न करै ॥

(५) मलके वेगमें जबतक दस्त न हो आवे स्नान न करै॥

(६) अधिक थकावट में भी स्नान करना अनुचित है ॥

(७) निर्बल रोगी को मेह में या पानी की धार से या गोता मारकर स्नान करना कदापि उचित नहीं ।

(८) कड़ी धूप में बैठ कर स्नान करना बुरा है ।

(९) आधी रात के समय स्नान कभी न करे ।

(१०) सचैल नित्य स्नान करना हानिदायक होता है ।

(११) ठंढा पानी पीकर तुरन्त स्नान न करे ।

(१२) बिना जानी नदी या तालाब में गोता मारकर स्नान करना अनुचित है ।

(१३) उरःक्षत रोगी या जिस का रुधिर सिर पर दौड़ जाता हो या जिस के पेट या फेफड़ों से खून आता हो या जिस की आतें हटगई हों या कोई बड़े परिश्रम का काम किया हो या ज्वर की बारी हो या जिस समय चित्तपर अधिक उद्वेग या उत्साह या क्रोध हो या जब शरीर से बहुत स्राव होता हो जैसा कि संग्रहणी प्रवाहिका और विशूचिका में बहुत दस्त आते हैं या बहु मूत्र के रोग में या जब नाक से लोहू निकलता हो या कोई फोड़ा या घाव बहुत बहता हो या स्त्री ऋतु धर्म में हो तब स्नान करना हानिदायक होता है । रजोधर्म होते ही स्त्रियों को तत्काल स्नान करने से योषापस्मार (हीस्टीरिया) का रोग होने के कारण होता है

(१४) स्नान करके तुरन्त भोजन करना भी बुरा है ।

(१५) जिस पानी में कीड़े पड़गये हों समस्थलिया जीव गिरने से सड़गया हो या जिस तालाब या नदी में मल मूत्र की नलियां लगी हों और उस का पानी चारों ओर से रुका हो ऐसे जल से स्नान कभी नहीं करे ॥

देह अंगोछना ।

(१) स्नान करने के पीछे अच्छे प्रकार किसी उत्तम वस्त्र

---

(१) स्नानस्यानन्तरं सम्यक् वस्त्रेणांगस्य मार्जनम् ।
कान्तिप्रदं शरीरस्य कंडूत्वग्दोषनाशनम् । [illegible]२४

से शरीर को मल कर स्वच्छ कर पोंछना चाहिये जिस से पानी की तरी शरीर पर न रहे वर्षा और शीत ऋतुओं में शरीर पर जल का अंश रहने से खाज फुंसी उत्पन्न हो जाती हैं। कांखों में पानी के रहने से दुर्गंधि आने लगती है और रागों और कमर में रहने से दाद उत्पन्न हो जाती है इसी भांति कोनों को न मलने और पोंछने से खुजली का रोग हो जाता है। यह देह पोंछने का वस्त्र जिसे अंगोछा या तौलिया कहते हैं मोटा रूखा खरखरा इस काम के लिये जैसे देशी कपड़े का या मोटी तौलियां जो नई तरह की अब प्रचलित हुई हैं। अच्छी होती हैं क्योंकि ऐसे वस्त्र के पोंछने या रगड़ने से त्वचा के विकार दूर हो जाते हैं दाद खाज उत्पन्न नहीं होती अतएव शरीर की कान्ति और शोभा बढ़ती है ॥

अनुलेपन

(१) स्नानानन्तर ऋतु के अनुसार माथा छाती भुजा आदि पर जो रज या मिट्टी या चन्दन धारण किया जाता है वह अनुलेपन कहाता है। अनुलेपन करने से सौभाग्य बल प्रीति कांति की वृद्धि सौन्दर्य्य शरीर की बनावट का सुधार और पसीना दुर्गन्ध का नाश होता है।

प्राचीन समय से भारतवर्ष में अनुलेपन की परिपाटी प्रचलित है यहां योगी यती वैरागी ब्राह्मण क्षत्री वैश्य मल्ल विद्यार्थी आदि अपने २ शरीरों पर भस्म रज मिट्टी या चन्दनादि सुगन्धित पदार्थ लगाते हैं।

इसी नियम पर अमेरिकावाले डाक्टरों ने मिट्टी द्वारा रोगों की चिकित्सा सिद्ध की है जिस को (टेरापेथी) क-

(१) सौभाग्यदं वर्णकरं प्रीत्योजोबलवर्द्धनम् ॥
स्वेददौर्गन्ध्यवैवर्ण्य श्रमघ्नमनुलेपनम् ॥

हते हैं यह टेरापेथी शब्द संस्कृत के धरापथ्य शब्द से बना है और इस प्रकार की चिकित्सा का मूल "अध्यामृदाहरेत्" श्रुति है जो भारतवासियों का सिद्धान्त प्राचीन काल से चला आता है। इस से सिद्ध है कि पश्चिमी विद्वानों का टेरापेथी शब्द और उस का अर्थ दोनों ही भारतीय मूल से उत्पन्न हैं इस काम के लिये चिकनी श्वेत खड़िया मिट्टी या भस्म रज ये शरीर और उस के विशेष अंगों पर लगाने से अनेकशः रोग दूर होते हैं तथा भीतरी और बाहरी दुर्गन्ध जाती रहती है क्योंकि मिट्टी में चंगा करने की एक अद्भुत शक्ति है जिस से मनुष्य के शरीर की वह सब वस्तुएं जो जीवधारी की जान की बाधक हैं चूस लेती है। मिट्टी गन्ध के अंश को खींच कर अपने में मिला लेती है जिस से पूर्ण आरोग्यता होती है † अब रहा यह कि चन्दनादि का धारण करना निश्चय गुणकारी है परन्तु ऋतु के अनुसार जैसे ग्रीष्म ऋतु में कर्पूर चन्दन युक्त तथा शीतकाल में चन्दन केशर कस्तूरी अगर आदि गर्म और सुगन्धित वस्तुओं का लेप करना विशेष गुण करता है। इसी भांति वर्षा में कपूर केशर चन्दन मिला के लगाना दुर्गन्धित वायु का बुरा प्रभाव नहीं होने देता और मस्तक सर्दी धूप लू आदि से बचा रहता है॥ ऐसे ही भस्म धारण विशेष सर्दी गर्मी के वेग को रोकता है प्रायः साधू लोग शीत काल में सर्वांग में भस्म को लपेट नंगे बैठे रहते हैं ग्रीष्म में सूर्य्य की कड़ी धूप में पंचाग्नि तपते हैं परन्तु उन्हें शीत उष्ण बाधा नहीं कर सकती जिस का मुख्य कारण भस्म ही है॥

---

† इस का विशेष वृत्तान्त देखा चाहो तो सिरसा निवासी लाला काशीनाथ खत्री रचित मिट्टी द्वारा रोगों की चिकित्सा विधि को पढ़िये ॥

पांचवां अध्याय

आहार के विषय में

यह बात पूर्णरूप से सिद्ध हो चुकी है कि आरोग्यता का मूल कारण आहार विहार की योग्यता है। आहार ही पर शरीर की पुष्टता तथा जीवन निर्भर है आहार से ही सारी इन्द्रियां चैतन्य रहती हैं आहार से शरीर पुष्ट होता और बढ़ता है। आहार से ही संसार के सारे काम सूझते हैं आहार से ही मनुष्य दून की हांका करता है। आहार के ही लिये मनुष्य देश विदेश मारा भटकता फिरता है आहार के ही कारण सत्यासत्य का वर्त्ताव करता है आहार के लिये सब की ऊंच नीच सहता है अतएव आहार सब से उत्तम शरीर का रक्षक है।

(१) भूख—प्यास—नींद और स्त्रीप्रसंग ये चार वांछा मनुष्य के शरीर में नित्य स्वाभाविक होती हैं। इन वांछाओं में भूख प्यास के विना मनुष्य का जीना असंभव है। हां इतना अलबत्ता हो सकता है कि प्यास की अपेक्षा आहार के विना कुछ काल प्राण रक्षा हो सकती है॥

भोजन का समय

(१) यथोक्त गुण संपन्न जिस का वर्णन आगे होगा दोष

---

(१) शरीरेजायतेनित्यं आंकाक्षाचतुर्विधा। बुभुक्षाचपिपासाच सुषुप्साचरतिस्पृहा १
आयुर्वे० सू० अ० ३५

(१) यथोक्तगुणसंपन्न मुपसेवेतभोजनम्।
विचार्यदोषकालादीन् कालयोरुभयोरपि॥
सु० सू० अ० ४६

और समय का विचार कर भोजन को समय अर्थात् एकवार दिन में और एकवार रात में करना चाहिये ॥ दिन में भोजन करने का मुख्य समय एक प्रहर के उपरान्त तथा दोपहर के भीतर का है। परन्तु रात्रि का भोजन एक प्रहर रात के भीतर ही करना आरोग्यता दायक होता है। दिन के भोजन से दिन की थकावट दूर होती है और रात्रि के भोजन से रसादिक धातु बनते हैं परन्तु रस दोष और मल के पकने पर जब भूख लगे वही समय आहार करने का ठीक है।

(२) वाग्भट्ट जी का यह सिद्धान्त है कि जब मलमूत्र का त्याग अच्छी तरह हो जाय और रस शेष से हृदय का भारीपन जाता रहे तथा वातादि दोषों की प्रवृत्ति अपने २ मार्गों में हो जाय और अधोवायु शुद्ध आने लगे और जठराग्नि की अधिकता से शरीर हलका हो जाय और भूख लगी जान पड़े उसी समय विधि और नियम के साथ भोजन करै ॥

(३) सुश्रुत जी लिखते हैं कि जब रात्रियां बड़ी होती हैं तब एक प्रहर दिन के भीतर विरुद्ध भोजन भी पच जाता

---

(२) विसृष्टेविण्मूत्रेहृदिसुविमलेदोषस्व-
पथगे विशुद्धेचोद्गारेक्षुदुपगमनेवातेऽनुसरति
तथाऽग्नावुद्रिक्तेविशदकरणेदेहेचसलघौ प्रयु-
ञ्जीताहारंविधिनियमितःकालःसहिमतः ॥

वा० सू० अ० ८

(३) अतीवायतयामास्तु क्षपायेष्वृतुषुस्मृताः ॥
तेषुतत्प्रत्यनीकाढ्यं भुञ्जीतप्रातरेवतु—१ ॥
येषुचापिभवेयुश्च दिवसाभृशमायताः ।
तेषुतत्कालविहित मपराह्णेप्रशस्यते ॥ १ ॥

सु० सू० अ० ४६

है इसी प्रकार जब दिन बड़े होते हैं तब दोपहर के पीछे तत्काल का बना हुआ भोजन हितकर होता है और जब रात दिन क़रीब २ बराबर हों तब दो पहर पर भोजन करने का समय ठीक होता है । इस के अनन्तर जो मनुष्य कोमल प्रकृति वाले हों या जिन्हें लिखने पढ़ने सोचने आदि का परिश्रम अधिक करने पड़ता हो जैसे प्रायः विद्यार्थी अध्यापक वाक्पाल (वकील) और न्यायाधीश (अदालती हाकिम) और उपदेशक—कथक्कड़ आदि को नियत समय के अतिरिक्त दो २ प्रहर के पीछे कुछ थोड़ा सा भोजन करना उचित है क्योंकि शारीरिक परिश्रम करने वालों की अपेक्षा मानसिक परिश्रम करने वालों को अधिक बलदायक और पौष्टिक पदार्थ खाने की आवश्यकता है क्योंकि यदि मस्तिष्क (दिमाग) को अधिक पौष्टिक पदार्थ न मिलें तो वह विकारी हो जाता है और मानसिक परिश्रम करने वाला शीघ्र शिथिल और वृद्ध हो जाता है ।

(४) ऐसे मनुष्यों को सदैव प्रातःकाल शौच के अनन्तर और सन्ध्या समय एक प्रहर दिन रहे कोई बलिष्ठ पदार्थ या मेवा मिठाई आदि खा के जल पीने का अभ्यास रखना चाहिये या केवल ठण्ढा या किञ्चित् गर्म किया हुआ दूध पी लेना बहुत आवश्यक है ऐसा करने से शरीर का बल अधिक परिश्रम करने पर भी नहीं घटता । क्योंकि भोजन करने के पीछे एक प्रहर तक रसोत्पत्ति होती है अर्थात् वह किया हुआ भोजन पचता है तब तक कुछ न खावे और दो प्रहर तक उस का बल रहता है पुनि दोपहर के उपरान्त कुछ न खाने से बल क्षय होता है ।

---

(४) याममध्येनभोक्तव्यं याम युग्मंनलङ्घयेत् ।
याममध्येरसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः ॥

समय का भोजन

यह बात परीक्षा से सिद्ध हो चुकी है कि जिन मनुष्यों के भोजन का समय नियत होता है उन को नियत समय पर ही भूख लगती है।

(१) क्षुधातुर मनुष्य समय पर प्रकृति के अनुसार हलका चिकना, ताजा, गर्म, और अन्त में द्रव अन्न की मात्रा सहित भोजन करे क्योंकि समय पर जो भोजन प्रकृति के अनुसार प्रमाण के साथ खाया जाता है वह दुःखदायी नहीं होता और पुष्टिकारक होता है। हलका भोजन शीघ्र पचता है चिकना तथा गर्म भोजन बलदायी और जाठराग्नि वर्द्धक होता है निर्दोष और अन्त में पतला भोजन तुरन्त ही पचता है।

कुसमय का भोजन ॥

(१) बिना भूख और नियत समय से पहिले भोजन किया जाता है वह व्याधि जनक वरञ्च कभी २ मृत्युदायक होजाता है इसी प्रकार जो अतीत काल में अर्थात् भोजन के समय से

---

(१) काले सात्म्यं लघु स्निग्धं क्षिप्रमुष्णं द्रवोत्तरम्।
बुभुक्षितोऽन्नमश्नीयान्मात्रावद्विदितागमः ॥
लघु शीघ्रं व्रजेत्पाकं स्निग्धोष्णं बलवह्निदम्।
क्षिप्रं भुक्तं समं पाकं यात्यदोषं द्रवोत्तरम् ॥
सु० सू० अ० ४६

(१) अप्राप्तकाले भुञ्जानः शरीरे ह्यलघौ नरः।
तांस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणं वा नियच्छति ॥
अतीतकाले भुञ्जानो वायुनोपहतेऽनले।
कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं द्वितीयं च न काङ्क्षति ॥ सु०

पीछे भोजन किया जाता है वह वायु से उपहत हुआ जाठराग्नि द्वारा कठिनता से पचता है इसी कारण पुनि दूसरेवार भोजन की इच्छा नहीं होती ।

परिमित भोजन ॥

(२) सदैव परिमित भोजन करे क्योंकि मात्रा वाला भोजन सुख से पचता और जाठराग्नि को बढ़ाता तथा धातुओं की समता रखता है ।

(३) विना विकार के नियत समय तक जितना भोजन पच जावे उतना ही भोजन परिमित भोजन (मात्रा वाला भोजन) कहाता है । अतः भारी द्रव्यों के खाने में आधे पेट भोजन करे और उसी प्रकार हलके पदार्थों के खाने में अति तृप्ति नहीं करे । यदि पिठी आदि के पदार्थों को भर पेट भोजन कर ले तो थोड़ा२ करके कई वार मात्रा से दूना पानी पी लेने से सुख के साथ पिष्टान्न पच जाता है ।

(४) हीन मात्रा का और अधिक मात्रा का भोजन भी

---

(२) सुखञ्जीर्य्यतिमात्रावद्धातुसात्म्यंकरोतिच ।
मात्राशीसर्वकालंस्यान्मात्राह्यग्नेःप्रवर्त्तिका ॥
वा० सू० अ० ८

(३) मात्राप्रमाणंनिर्द्दिष्टं सुखंयावद्विजीर्यति ।
गुरूणामर्द्धसौहित्यं लघूनांनातितृप्तता ॥
पिष्टान्नंनैवभुञ्जीत मात्रयावाबुभुक्षितः ।
द्विगुणंचपिबेत्तोयं सुखंसम्यक्प्रजीर्य्यति ॥वा०सू०
(४) नाप्राप्तातीतकालं वा हीनाधिकमथापिवा ।
हीनमात्रामसन्तोषं करोतिचबलक्षयम् ॥
आलस्यगौरवाटोपसादांश्चकुरुतेधिकम् ॥ [illegible] ०४६

निन्दित है क्योंकि भूख लगने पर थोड़ा भोजन करने से बल क्षय होता है। और कहा भी है कि भूखा भला झरूखा नागा इसी प्रकार अधिक भोजन करने से शरीर में आलस्य, भारीपन, पेट का फूलना मन्दाग्नि होजाती है।

अन्य प्रकार से भोजन के दोष ॥

समशन—विषमाशन और अध्यशन प्रकार से भोजन करना तीन भांति का दूषित माना गया है ॥

(१) हित और अहित (पथ्यापथ्य) दोनों तरह के मिले हुए भोजनों को एक साथ खाना समशन कहाता है।

(२) कुसमय पर या समय पर थोड़ा या बहुत भोजन करना विषमाशन कहाता है।

(३) एकवार का भोजन न पचा हो और उस के ऊपर दुवारा भोजन करने को अध्यशन कहते हैं।

(४) जो मनुष्य इस प्रकार से भोजन करते हैं उन के शिर पर काल सदैव गर्जता रहता है और वे ही मनुष्य विशूचिका आदि मारक रोगों से पीड़ित होते हैं या मर ही जाते हैं। किसी कवि का वचन है अन्न तारे और अन्न मारे ॥ अर्थात् जब अन्न प्रमाण के साथ समय पर खाया जाता है तब वह तारता है और अपरिमित कुसमय पर खाने से मारता है ॥

(५) सुश्रुत जी लिखते हैं कि जिन मनुष्यों की इन्द्रियां

---

(१) हिताहितोपसंयुक्त मन्नंसमशनंस्मृतम् ।
(२) बहुस्तोकमकालेवा विज्ञेयंविषमाशनम् ॥
(३) साजीर्णोभुज्यतेयत्त तदध्यशनमुच्यते ।
(४) त्रयमेतन्निहन्त्याशु बहून्व्याधीन्करोतिवा ।
(५) अनात्मवंत:पशुवद्भजंतयेऽप्रमाणत:
रोगानीकस्यतेमलमजीर्णंप्राप्नुवन्तिहि ॥सु०चि०अ०

स्वाधीन नहीं हैं वह पशुओं के भांति अपरिमित भोजन करते हैं वह अजीर्ण रोग को जो समस्त रोगों की जड़ है प्राप्त होते हैं ॥

(६) और जिन का परिमित भोजन है और वैद्यक परिपाटी पर चलते हैं उन को वे रोग नहीं होते और जो मूर्ख या अजितेन्द्रिय और भोजन के लोभी हैं जिन का सिद्धान्त (परान्नंदुर्लभंलोके) है वह अपना या पराया अच्छा भोजन पा कर अप्रमाण खाते चले जाते हैं उन को विशूचिकादि रोग अवश्य होते हैं । अतः बुद्धिमान् को उचित है कि अपने खाने पीने का संयम विचार के साथ नियत समय पर रक्खे । इन उपरोक्त कारणों के सिवाय एक और अवगुण भोजन का समय पर न मिलना है ।

(७) भूख लगने पर जो लोग नहीं खाते उन को अनेक रोग जो आरोग्यता के बाधक हैं जैसे अंग में पीड़ा अरुचि थकावट औंघनी' नेत्रों की निर्बलता धातुक्षय दाह और बलक्षय होते हैं । जब जठराग्नि को आहाररूप ईंधन नहीं मिलता तब

---

(६) नतांपरिमिताहारा लभंतेविदितागमाः ।
मूढास्तामजितात्मानो लभंतेशनलोलुपाः ॥१॥
(७) भोजनेच्छाविघातःस्या दंगमर्दोऽरुचिःक्रियाः ।
तन्द्रालोचनदौर्बल्यं धातुदाहोबलक्षयः॥१॥ सु०चि०
बुभुक्षितोनयोश्नाति तस्याहारेंधनक्षयात् ।
मन्दीभवतिकायाग्नि र्यथाचाग्निर्निरन्धनः २
आहारंपचतिशिखी दोषानाहारवर्जितः ।
दोषाणांचक्षयेधातून् प्राणान्धातुक्षयेपचेत ।

वह ठण्डी हो जाती है। और फिर वही वातादिक दोषों को नष्ट कर धातुओं को भस्म करती हुई प्राणों को हर लेती है। ऐसे मनुष्य प्रथम दुर्बल होते हैं पुनि रोगी होकर मर जाते हैं॥

शुद्ध आहार के गुण

(१) इस कारण उपरोक्त दोषों से रहित युक्ति से बना हुआ भोजन समय पर प्रमाण के साथ बरते। क्योंकि आहार प्राणधारियों को शीघ्र बल देता है। आहार ही से देह स्थिर रहती है आहार से ही आयु तेज उत्साह स्मृति (याद दाश्त) पराक्रम बढ़ता है आहार से ही जठराग्नि प्रबल रहती है

पाकशाला (रसोई घर)

(२) सम धरातल भूमि में लंबा चौड़ा जाली झरोखाओं से युक्त जिसका पटाव ऊंचा हो और धुएं निकलने का मार्ग जिसमें ऐसा हो कि जिससे धुआं सारे मकान में न फैल सके ऐसा स्वच्छ स्थान रसोई घर होना चाहिये और सुन्दर सुथरे रसोई बनाने के पात्रों से युक्त तथा विश्वासी मनुष्यों से सेवित होवे—

---

(१) तस्मात्सुसंस्कृतयुक्त्या दोषैरेतैर्विवर्जितम्।
यथोक्तगुणसंपन्न मुपसेवेतभोजनम् ॥ १ ॥
आहारप्राणिनःसद्यो बलकृद्देहधारकः ॥
आयुस्तेजःसमुत्साह स्मृत्योजोऽग्निविवर्द्धनः २
सु० सू० अ० ४६

(२) प्रशस्तदिग्देशकृतं शुचिभांडंमहच्छुचि।
सजालकंगवाक्षाढ्य माप्तवर्गनिषेवितम्।
विकक्षसृष्टसंसृष्टं सवितानंकृतार्चनम् ॥ सु० क० अ० १

भोजन स्थान

भोजन करने का स्थान स्वच्छ सफेदी से पुता हुआ पाकशाला से अलग कुछ दूर पर होना चाहिये और वह स्थान सिकुड़ा हुआ न हो तथा रमणीक और अन्य मनुष्यों से रहित शुभ पवित्र और सुगंधित पुष्पादिक युक्त होवे वहां पर भोजन करना श्रेयस्कर होता है । भोजन करते समय माता पिता मित्र बांधव वैद्य रसोइया और पखेरुओं में हंस सारस चकोर का पास रहना अच्छा होता है और हीन दीन कृश काग स्त्री तपस्वी रोगी तथा कुत्ता बिल्ली मुर्गा इनका भोजन करते देखना अच्छा नहीं होता ॥

पाक कर्त्ता (रसोइया)

(४) जिनको रसोइया रखने की जरूरत हो उनको उचित है

---

(३) आप्तान्वितमसंकीर्णं शुचिकार्यंमहानसम् ।
तत्राप्तैर्गुणसंपन्न मन्नंभक्ष्यंससंस्कृतम्॥
शुचौदेशेसुसंगुप्तं समुपस्थापयेद्भिषक् ॥सु०सू०अ०४६
भोक्तारंविजनेरम्ये निःसंबाधेशुभेशुचौ ।
सुगन्धिपुष्परचिते समेदेशेऽथभोजयेत् ॥
सु० सू० अ० ४६

(४) परीक्षितस्त्रीपुरुषं भवेच्चापिमहानसम् ।
शुचयोदक्षिणादक्षा विनीताःप्रियदर्शनाः ॥ १ ॥
संविभक्ताःसुमनसो नीचकेशनखाःस्थिराः ।
स्नातादृढसंयमिनः कृतोष्णीषाःसुसंयताः ।
तस्याचाज्ञाविधेयास्युर्विविधाःपरिकर्मिणः ।
सु० चि० अ० २४

कि प्रथम रसोइया की परीक्षा करके भरती करें क्यों कि पवित्र चतुर बिनयी और प्रिय तथा स्वामि भक्ति वाले स्त्री या पुरुष इस काम के लिये श्रेष्ठ गिने जाते हैं। पाककर्त्ता सदैव केशों को छोटा तथा नखों को कटा हुआ रक्खे और शिर को बांधे हुये रहे और स्थिर चित्त दृढ़ प्रतिज्ञ तथा सावधान रहे और पाकाध्यक्ष की आज्ञा माननेवाला और पाक क्रिया में निपुण होवे। खुले केश या बड़े केश होने से बहुधा पदार्थों में गिर पड़ने का भय रहता है इसी प्रकार नख बड़े होने से उन में मैल भरा रहता है जिस से पाक दूषित हो जाता है। अधीर होने से घबड़ा कर कुछ का कुछ कर बैठने की शंका रहती न दृढ़ प्रतिज्ञ होने से दुष्ट बैरी आदि के भड़काने या लोभ दिखाने में बदलता नहीं॥

पाकाध्यक्ष

(१) जिन सेठ साहूकार राजा महाराजाओं के यहां नित्य रसोई में बहुत प्र कार की सामग्री बनतीं हैं और कई एक रसोय्या उस काम के लिये नियत हैं उनके ठीक २ प्रबन्ध तथा आहार की स्वच्छता तथा उन के मिलने या एक साथ खाने से जो प्रायः विषैले हो जाते हैं जानने के लिये या बहुधा लोग राजा के बल से पराजित हुए और अपने किये हुये को प्राप्त हुए ऐसे दुष्ट चित्तवाले किसी प्रकार छल छिद्र से प्राप्त हो कर रसोई आदि में विष मिला कर हानि पहुंचाते हैं अतः उन की रक्षा के लिये पाकाध्यक्ष नियत करे॥ जो भले प्रकार समय २ पर जांच करता रहे !

---

(१) रिपवोऽतिक्रमाक्रान्ता यच्चस्वकृत्यतांगताः।
सिसृक्षवःक्रोधविषं विवरंप्राप्यतादृशम्॥ १॥
विषैर्निहन्युर्निपुणां नृपतिंदुष्टचेतसः।
तस्माद्वैद्येनसततं विषाद्रक्ष्यानराधिपः॥ २॥
सु० क० अ० १

(२) वाग्भट्ट जी इस विषय में लिखते हैं कि राजा महाराजाओं को उचित है कि अपने पास वैद्य को सदैव रक्खे और वह वैद्य अन्नपान शयन माल्य वाहन आदि कर्मों में सावधान रह कर उन की रक्षा करता रहे क्योंकि समस्त मनुष्यों का योग क्षेम, और धर्म अर्थ काम मोक्ष ये सब राजा ही के आधीन होते हैं।

पाकाध्यक्ष के लक्षण

(३) अच्छे कुल का धार्मिक दयालु, निर्लोभ, सज्जन, राजभक्त, कृतज्ञ, प्रियदर्शन, सुन्दर, स्वच्छ, जितेन्द्रिय, क्षमावाला, शीलवन्त, बुद्धिमान्, विनयी, परिश्रम रहित, हित का चाहनेवाला, चतुर, धैर्य्यवंत, निपुण, निश्छल, आदि सद्गुण युक्त तथा क्रोध, मत्सरता, अहंकार आलस्य, माया, आदि अवगुण रहित ऐसे पूजित वैद्य को पाकाध्यक्ष नियत करै॥

---

(२) राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्य्यं निवेशयेत्।
सर्वदा सम्भवत्येवं सर्वत्र प्रतिजागृविः ॥ १ ॥
अन्नपानं विषाद्रक्षेद् विशेषेण महीपतेः।
योगक्षेमौ तदायत्तौ धर्माद्यास्तन्निबन्धनाः ॥ २ ॥

वा० सू० अ० ७

(३) कुलीनं धार्मिकं स्निग्धं सुभृतं सततोत्थितम्।
अलुब्धमशठं भक्तं कृतज्ञं प्रियदर्शनम् ॥ १ ॥
क्रोधपारुष्यमात्सर्य्य मदालस्यविवर्जितम्।
जितेन्द्रियं क्षमावन्तं शुचिं शीलदयान्वितम् ॥२॥
मेधाविनयसंश्रान्त मनुरक्तं हितैषिणम्।
पटुप्रगल्भनिपुणं दक्षमायाविवर्जितम् ॥ ३ ॥
तत्राध्यक्षं नियुञ्जीत वैद्यं तद्विद्यपूजितम् ॥

भोजनपात्र

(४) भोजन के समय घी कांसे के पात्र में और पेया (अन्न की कणों सहित पतली लपसी या गुड़धानी) चांदी के पात्र में रक्खे और सब प्रकार के फल और भक्ष्य पदार्थ पत्तलों में स्थापित करे। परिशुष्क (सूखामांस) और प्रदिग्ध (रसादार) इन को भी सोने के पात्रों में धरे और पतले रस चांदी के पात्रों में परोसे। दही की मलाई या तक्र और खट्टी सलोनी चटनी को पत्थर की कुंडी में देना चाहिये पीने के लिये उत्तम औटाया हुआ दुर्गन्ध रहित सुगंधित शीतल जल तांबे के पात्र में रक्खे और उसे सोने या चांदी या तांबे या कांसे या मणि (बिल्लौर) के पात्र में या इन के अभाव में मिट्टी के पात्र से पीवे। पीने के वस्तु पना, मदिरा, ये मिट्टी के पात्र में देवे रागखांडव (अनार दाख युक्त मूंग का

---

(४) घृतंकार्ष्णायसेदेयं पेयादेयातुराजते।
फलानिसर्वभक्ष्यांश्च प्रदद्याद्वैदलेषुच ॥ १ ॥
परिशुष्कप्रदिग्धानि सौवर्णेषु प्रकल्पयेत्।
प्रद्रव्याणिरसांश्चैव राजतेषूपहारयेत् ॥ २ ॥
कट्वराणिखडांश्चैव सर्वान्शैलेषुदापयेत्।
दद्यात्ताम्रमयेपात्रे सुशीतंसुशृतंपयः ॥ ३ ॥
सौवर्णेराजतेताम्रे कांसेमणिमयेतथा।
पुष्पावतंसं भौमेवा सुगन्धिसलिलं पिबेत् ॥४॥
पानीयंपानकंमद्यं मृण्मयेषुप्रदापयेत्।
काचस्फटिकपात्रेषु शीतलेषुशुभेषुच ॥ ५ ॥
दद्याद्वैडूर्य्यपात्रेण रागखांडवसट्टकान्।

सु० सू० अ० ४६

यूष) और सट्टक (एक प्रकार की शिखरिणी) * इन को कांच के पात्र या विल्लौर के पात्रों में स्थापित करै स्वच्छ सुथरे और मनोहर थालियों में दाल भात रोटी को रक्खे। उपरोक्त पात्रों के अभाव में उक्त धातु सोना चांदी आदि की कलई पात्रों में होने से वही गुण होता है या पत्थर मिट्टी के बरतन काम में लावे।

(१) सोना चांदी कांसा लोहा और कांच के पात्रों में अथवा उत्तम पत्तों के पत्तलों में मनुष्य को भोजन करना चाहिये॥

(कांसा) संजोवना (भोजन वस्तु रखना)

(१) भोजनालय में जिस का वर्णन ऊपर लिख चुके हैं

---

*लवंगव्योषखंडैस्तु दधिनिर्मथ्यगालितम्।
दाड़िमीवीजसंयुक्तं चन्द्रचूर्णावचूर्णितम्।
सट्टकन्तुप्रमादाख्यं नलादिभिरुदाहृतम् (सुश्रुते)

(१) हैमेवाराजतेकांस्ये ष्पायसेकाचनिर्मिते।
पात्रेपत्रमयेवापि नरःकुर्वीतभोजनम्॥ १॥
आ० वि० सू० अ० ३५

(१) पुरस्ताद्विमलेपात्रे सुविस्तीर्णमनोरमे।
सूदःसूपौदनंदद्यात् प्रदेहांश्चसुसंस्कृतान्॥ १॥
फलानिसर्वभक्ष्यांश्च परिशुष्काणियानिच।
तानिदक्षिणपार्श्वेषु भुञ्जानस्योपकल्पयेत्॥२॥
प्रद्रव्याणिरसांश्चैव पानीयंपानकंपयः।
खण्डान्यूषांश्चपेयांश्चसव्येपार्श्वेप्रदापयेत्॥ ३॥
सर्वान्गुडविकारांश्च रागखांडवसट्टकान्।
पुरस्तात्स्थापयेत्प्राज्ञोद्वयोरपिचमध्यतः।
एवंविज्ञायमतिमान् भोजनस्योपकल्पनाम्॥४॥
सु० सू० अ० ४६

उत्तम एक चौकोण या गोल काठ की चौकी जिस पर समस्त पात्र व सामिग्री आजावे रख उस पर सुन्दर दाल भात और रोटी के थाल आगे रक्खे और सब प्रकार के भक्ष्य पदार्थ और फल तथा सूखा द्रव्य दाहिनी ओर रक्खे और सब प्रकार के द्रव्य रस जैसे पानी पना दूध यूषादि पदार्थ बांई ओर स्थापित करै और इन के बीच में गुड़विकार और राग खांडव लड्डू आदि धरै ॥ इस प्रकार बुद्धिमान् रसोइय्या वा पाकाध्यक्ष कांसे को संजोग कर स्थापित करै ॥

भोजनविधिः

(१) स्नान किये हुए क्षुधावंत पुरुष एकान्त में स्थित हो छः रसों से संयुक्त और विशेष कर मीठे रसवाले भोजन को न बहुत शीघ्र और न बहुत देर तक खावे। पुनि हाथ मुंह धो कर सुख पूर्वक ऊंची छाती और शरीर को खूब सीधा कर पालथी मार भोजन करै क्योंकि झुक कर खाने से पेट दबा रहता है इस से अन्न भली भांति आमाशय में जा कर परिपक्क नहीं होता ॥ भोजन करते समय प्रथम मांगलिक उत्तम पदार्थों के देखने से चित्त स्थिर हो कर संतोष बढ़ता है तथा भोजन रुचि के साथ खाया जाता है ॥

---

(१) स्नातःक्षुद्वान्विविक्तस्थो धौतपादकराननः।
ततोभोजनवेलायां कुर्य्यान्मांगल्यदर्शनम् ॥१॥
तस्यप्रदर्शनंचित्त स्थैर्य्यकृत्तुष्टिवर्द्धनम्।
षड्रसंमधुरप्रायं नातिद्रुतविलंबितम् ॥ २ ॥
सुखमुच्चैःसमासीनः समदेहोन्नतत्परः।
सुखासन्नोगुणैर्युक्त मुपसेवेतभोजनम् ॥ ३ ॥
सु० सू० अ० ४६

(१) इस के बाद जब भोजन करने को बैठे तो छिले हुए अदरक के टुकड़े जिस में किंचित् थोड़ासा सैंधव निमक मिला हो चबा कर खावे जिस से जठराग्नि प्रबल हो जाती है और भोजन करने में रुचि बढ़ती है तथा जीभ और कण्ठ का श्लेष्मा साफ़ हो कर भोजन का स्वादु भलीभांति प्राप्त होता है।

(२) भोजन करने के पहिले (खाली पेट) बात कुपित होता है और वह बात मधुर रस से शान्त होता है अतः भोजन के आदि में मीठे पदार्थ खाना चाहिये और कुछ खाने के पीछे पित्त कुपित होता है और वह पित्त अम्लरस और लवणरस से शान्त होता है इस से उस समय खट्टी वा निमकीन वस्तुएं खावे इन रसों से अग्नि भी प्रज्वलित हो जाती है भोजन के अन्त में कफ कुपित होता है और वह कफ कडुवे कसेले चर्परे रसों से शान्त होता है इस से भोजन के अन्त में कडुवे कसेले और तीखे रसों को प्रीति के साथ मन लगा कर भोजन करना चाहिये।

(३) मधुर रस में पहिले अनार आम आदि फलों को

---

(१) भोजनाग्रेसदापथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम्।
अग्निसन्दीपनंरुच्यं जिह्वाकंठविशोधनम् ॥१॥

(२) पूर्वंमधुरमश्नीयात् मध्येऽम्ललवणौरसौ।
पश्चात्शेषान्रसान् वैद्योभोजनेष्ववचारयेत् ॥२॥

सु० सू० अ ४६

(३) आदौफलानिभुञ्जीतदाडिमादीनिबुद्धिमान्
ततःपेयांस्ततोभोज्यान्भक्ष्यांश्चित्रांस्ततःपरम् ॥
घनपूर्वंसमश्नीयात्केचिदाहुर्विपर्ययम्।
आदावन्तेचमध्येचभोजनस्यतुशस्यते।

खावे परन्तु हारीत जी ने इस स्थल पर लिखा है कि (आदौ फलानि भुञ्जीत वर्जयित्वातु कर्कटीम्) ककड़ी के बिना सब फलों को आदि में खावे परन्तु „कच्चा फल कभी नहीं खावे" फलों के पीछे पेय (दूध लपसी खीर आदि) पीवे उस के पीछे भोज्य (लड्डू जलेबी मालपुआ आदि) का भोजन करे फिर भक्ष्य तथा अन्य पदार्थ खावे । जो पदार्थ घने (कड़े) और भारी हों उन्हें एक साथ न खावे अर्थात् या तो पहिले जब कि जठराग्नि प्रबल होती है खावे या थोड़ा २ कई बार कर के खावे ऐसा करने से भलीभांति पच जाता है ॥

(१) आँवला त्रिदोषशमन और रसायन है इस से इसे सदैव भोजन के साथ खाना चाहिये । कमल की डन्डी कमलकंद और ईख आदि को भोजन के पीछे कदापि न खावे ।

(२) आँवला खाने की विधि वैद्यकशास्त्र में इस प्रकार लिखी है कि आँवले को ले कर अंगारों पर भून गूदा ले किसी कलईदार वर्त्तन में घी रख कर गर्म कर पुनि भूने और उस में हींग मिरच सेंधा निमक आदि मिला कर खावे ऐसे आँवले जठराग्नि को उत्पन्न करते हैं । जब गीले आँवले न मिला करें तो मुरब्बे का आँवला पानी से धो कर खावे ।

---

(१) निरत्ययं दोषहरं फलं ह्यामलकं नृणाम् ।
मृणालबिसशालूरकन्देक्षुप्रभृतीनि च ॥
पूर्वं भोज्यानि भिषजा न तु भुक्ते कथंचन ॥ सु० चि० २४

(२) अङ्गारपाकमृदुयत्नसुपाचितानि सिन्धूत्थहिंगु मरिचादिसमन्वितानि तप्ते घृते पुनरपि प्रतिभर्जितानि-धात्रीफलानि जनयन्ति हि जाठराग्निम् ॥१॥

(१) कभी भी एक रस नहीं खावे अर्थात् थोड़े २ सब रसों को खाता रहे और बुरे शाक और अधिक अन्न तथा खट्टे रस इनका बहुत सेवन नहीं करे और सब रसों को भी एक साथ नहीं खावे ।

भोजन करने के बाद जब तक भूंख अच्छी तरह नहीं लगे कदापि दुबारा भोजन न करे क्योंकि पूर्व भुक्त में विदग्ध अन्न होने पर भोजन करने से जठराग्नि नाश होजाती है। इसलिये युक्ति के साथ सुसंस्कृत भोजन को खावे–

(२) जो मनुष्य अधिक नमकीन खट्टे चर्चरे रस और विदाही अन्न शाक आदि को खाते हैं वह अवश्य भोजन के अन्त में दूध को पीवें क्यों कि दूध से उन रसों का विकार शान्त होता है ।

(३) भोजनान्त में दूध या तक्र का पीना अच्छा होता है परन्तु दही को कदापि भोजनान्त में नहीं खावे ।

---

(१) नचैकरससेवायां प्रसज्येतकदाचन ।
शाकावरान्नभूयिष्ठमम्लञ्चनसमाचरेत् ॥
एकैकश:समस्तान्वानाभ्यश्नीयाद्रसान्सदा ।
प्राग्भुक्तेत्वविविक्तेऽग्नौ द्विरन्नंनसमाचरेत् ॥२॥
पूर्वभुक्तेविदग्धेन्ने भुञ्जानोहन्तिपावकम् ।
तस्मात्सुसंस्कृतंयुक्त्या दोषैरेतैर्विवर्जितम् ॥

सु० चि० अ० २४

(२) लवणाम्लकटूष्णानि विदाहीन्यानियानितु ।
तद्दोषपरिहारार्थं भोजनान्तेपय:पिबेत् ॥ १ ॥
(३) कुर्यात्क्षीरान्तमाहारं नदध्यंतंकदाचन ।

(१) साधारण दशा में भोजन के पीछे तक्र का पीना विशेष गुणदायक होता है ॥

हलके और भारी भोजन की परीक्षा

(२) उर्द रोंसा आदि अन्न स्वभाव से ही भारी होते हैं मूंग आदि प्रमाण से अधिक भारी हो जाते हैं और पिसे हुए अन्न (पिठी के पदार्थ) संस्कार से भारी होजाते हैं ॥

(३) चूष्य (फलादिक) २ पेय (पीने के) ३ लेह्य (चाटनें के) ४ भोज्य (मिष्टान्न) ५ भक्ष्य (खाने के) और ६ चर्व्य (चबाने के) इन भेदों से आहार छः प्रकार का होता है ये यथोत्तर भारी होते हैं जैसे चूष्य से पेय और पेय से लेह्य इत्यादि ।

(४) द्रव पदार्थ के ऊपर द्रव की मात्रा भारी नहीं होती

---

(१) भोजनान्तेपिबेत्तक्रं किमन्यैरौषधैर्नृणाम् ।

(२) स्वभावतश्चगुरव स्तथासंस्कारतोगुरुः ।
मात्रागुरुस्तुमुद्गादि र्माषादिःप्रकृतेर्गुरुः ॥
संस्कारगुरुपिण्टान्नं प्रोक्तमित्युपलक्षणम् ॥१॥
सु० चि० अ० ४६

(३) आहारंषड्विधंचूष्यं पेयंलेह्यंतथैवच ।
भोज्यंभक्ष्यंतथाचर्व्यं गुरुविद्याद्यथोत्तरम् ॥१॥
आ० वि० सू० अ० ३५

(४) द्रवोत्तरोद्रवश्चापिनमात्रागुरुरिष्यते ।
द्रवाढ्यमपिशुष्कन्तुसम्यगेवोपपद्यते ॥१॥
विशुष्कमन्नमभ्यस्तंनपाकंसाधुगच्छति ।
पिण्डीकृतमसंक्लिन्नंविदाहमुपगच्छति ॥२॥
शुष्कंविरुद्धंविष्टंभिवह्निव्यापदमावहेत्॥सु०सू०अ०४६

सूखे पदार्थ द्रव के साथ भली भांति पच जाते हैं । विशुष्क और अभ्यस्त (बिखरे भये) अन्न अच्छे प्रकार नहीं पचते । पिण्डीकृत (पिण्डा बना के खाना) और असंक्लिन्न (बिन गले) अन्न दाह करते हैं इसी प्रकार शुष्क, विरुद्ध और विष्टंभी अन्न मन्दाग्नि को उपजाते हैं ॥

निषिद्धान्न

(१) दोनों समय नियत समय पर भोजन करै परन्तु बासा अन्न दुष्टान्न या जूंठा अन्न कभी नहीं खावे और जिस भोजन में पत्थर, कंकर तृण, लोहा केश या जीवजंतु गिर पड़े हों उसे भी नहीं खावे । व्युषित (बहुत देर से बना भया) व स्वादु रहित दुर्गन्धित या ठुर्रा भया या ठंडा हो गया हो या ठंडा होने पर दुवारा गर्म किया गया हो या जल गया हो या अशांत हो वह भी अन्न त्याज्य है । क्योंकि कच्चा या बासा अन्न पेट में गच करता है और कुछ दिनों बाद बड़े २ रोग पैदा कर देता है जला हुआ या सूखा या ठुर्रांना अन्न और कङ्कड़ पत्थरादि युक्त अन्न भोजन के साथ पेट में जा कर आंतों में चुभ के घाव कर देता है जिस से शूल आमातीसार या रक्तातीसार रोग हो जाता है सड़ा और बुसा भोजन पेट में विष उत्पन्न कर मारक बन जाता है । प्रकृति

---

(१) विभज्यकालदोषादीनूकालयोरुभयोरपि ।
अचोक्षंदुष्टमुच्छिष्टंपाषाणतृणलोष्टवत् ॥१॥
द्विष्टंव्युषितमस्वादुपूतिचान्नंत्रिवर्जयेत् ।
चिरसिद्धंस्थिरंशीत मन्नमुष्णीकृतंपुनः ॥२॥
अशान्तमुदग्धञ्च तथास्वादुनलक्ष्यते ॥

सु० सू० अ० ४६

विरुद्ध या बिना रुचि का भोजन या अध्यशन भोजन परिपक्क नहीं होता या वमन द्वारा निकल जाता है उच्छिष्ट भोजन करने से कुष्ठ उपदंश ज्वर अर्श आदि संपर्कज रोग होजाते हैं ॥

(१) धर्मशास्त्र में यहां तक निषेध है कि न किसी का उच्छिष्ट खावे और न किसी को अपना उच्छिष्ट देवे बल्कि अपनी भार्य्या के साथ बैठ कर भी एक थाल में भोजन न करे। दूषित अस्वादु और दुर्गन्धित अन्न भी भली भांति न पचने से बलदायक नहीं होता ॥

(२) अधिक भोजन करना आरोग्यता आयु स्वर्गसुख और पुण्य का विरोधी तथा जगत् में निन्द्य होता है क्योंकि अधिक भोजन करने से अजीर्ण विशूचिका आदि मृत्युजनक रोग उत्पन्न होते हैं अधिक खाने से आलसी बन बैठता है अतः सुकर्मादि की असामर्थ्य से स्वर्ग व पुण्य का विरोधी होता है अधिक भोजन करनेवाले की लोग हंसी करते हैं इस से जगत् में निंद्य है।

(३) वाग्भट्ट जी का सिद्धान्त है कि बहुत से या सूखे

---

(१) नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ॥
नचैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजन् ॥१॥
नाश्नीयाद्भार्यया सार्द्धम् इति म० अ० २ । व ४

(२) अनारोग्यमनायुष्य मस्वर्ग्यंचातिभोजनम्।
अपुण्यंलोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ म० अ० २

(३) शाकावरान्नभूयिष्ठ मत्युष्णालवणांत्यजेत् ।
किलाटदधिकूचीका क्षारशुक्ताममूलकम् ॥ १ ॥
माषनिष्पावशालूक त्रिषपिष्टविरूढकम् ।
शुष्कशाकानियवकान् फाणितंचनशीलयेत् ॥२॥
कृशशुष्कवराहावि गोमत्स्यमाहिषामिषम् १ ॥
वा० सू० अ० ८

शाक बुरे अन्नों का भोजन अति गर्म या अति नमकीन भोजन पेवसी (गिजरी) दही सुरचन खार (सज्जी जवाखार सुहागा आदि) कांजी कच्चीमूलां और उर्द मटर शालूक (भसूड़ा) कमलकंद इन की पिठी से बने पदार्थ या अंकुरित अन्न या शाक या जौ और फाणित (पतोई) इन को बहुत दिनों तक लगातार नहीं खावें। इसी भांति मांसाहारी मनुष्य भी सूखे या कृश जीवों के मांस तथा शूकर, भेड़, गौ, भैंसा और मछली के मांस को कभी नहीं खावें॥ जिन भोजनों का आपस में विरोध है उन को साथ २ न खावे क्योंकि वे मिलकर विष समान होजाते हैं। यथा–

(१) कोयला (काशीफल) कवक, करीर (टेंटी) सब प्रकार के खट्टे फल नमक, कुलथी पीना (खल) दही तेल विरोही पिठी सूखे शाग बकरी का मांस, भेड़ का मांस, मदिरा जामुनफल चिलमल मछली (यह मछली धरती पर चली आती है और उस के सब शरीर पर लाल बिन्दु होते हैं और आंखें भी लाल २ होती हैं। जिसे तलब या बोगसा मछली कहते हैं) गोह का मांस जंगली सुअर का मांस इन को दूध के साथ न खावे।

(२) अंकुरित अन्न और ग्राम्य पशु मांस (भेड़ बकरी आदि) अनूपदेशीय जंतुमांस (कूल में रहनेवाले और तैरनेवाले या बिल में रहनेवाले जीवों का मांस और जलचारी जीवों के मांस को एकसाथ न खाय। तथा शहद दूध गुड़ और उर्द की दाल को एक साथ न खाय॥

---

(१) वल्लीफलकवककरीराम्लफललवणकुलत्थपिण्याकदधितैलविरोहिपिष्टशुष्कशाकाजाविकमांसमद्यजाम्बवचिलिमिलमत्स्यगोधावराहांश्चनैकध्यमश्नीयात्पयसा ॥

(२) नचविरूढधान्यैर्वसामधुपयोगुडमाषैर्वा–ग्राम्यानूपौदकपिशितादीनिनाभ्यवहरेत् ।

(३) बलाका शाक को मदिरा, कुल्माष (लोबिया) के साथ या अध उबले जौ के साथ नहीं खावे ॥

(४) मकोय को पीपर और मिरिच के साथ नहीं खावे

(५) नारी शाक, भंग, मुरगे का मांस, या मुरगे के अण्डे और दही इन को साथ नहीं खावे ॥

(६) शहद पर गर्म जल नहीं पीवे ॥

(७) पित्ते को मांस के साथ नहीं खावे वाग्भट्ट जी कच्चे मांस के साथ मांस खाना वर्जित करते हैं। उर्द की दाल को मूली के साथ न खावे ॥

(८) दूध और शहद के साथ सरसों के शाक या पौष्कर शाक को न खावे ॥

(९) मदिरा, खिचड़ी, खीर, इनको एक साथ न खावे।

(१०) सोवीरक (कांजी का भेद) के साथ तिलों की पूड़ी नहीं खावे ॥

---

(३) बलाकांवारुणीकुल्माषाभ्याम् ।

(४) काकमाचींपिप्पलीमरिचाभ्याम् ।

(५) नाडीभंगशाककुक्कुटदधीनिनचैकध्यम् ।

(६) मधुचोष्णोदकानुपानम् ।

(७) पित्तेनवामांसानि ।

आममांसानिपित्तेनमाषसूपेनमूलकम् । वाग्भट्ट॥

(८) नपयोमधुभ्यांरोहिणीशाकं जातुशाकं नाश्नीयात् ।

(९) सुराकृशरापयसांचनैकध्यम् ।

(१०) सौवीरकेनसहतिलशष्कुलीम् ।

(११) मछली के साथ गुड़ के पदार्थ न खावे ॥

(१२) गुड़ और मकोय साथ नहीं खावे ॥

(१३) शहद से मूली नहीं खावे ॥

(१४) सूअर के मांस को गुड़ या शहद से नहीं खावे ॥

(१५) हरी मूली के साथ दूध नहीं पीवे ॥

(१६) आमफल–जामनफल–और सेही–सूअर–गोह इन के मांस तथा सब प्रकार की मछलियां ये सब दूध से विरुद्ध हैं ॥

(१७) केले के फल और ताड़फलों को दूध या दही या मठा से कभी नहीं खावे ॥

(१८) बड़हल के फल को दूध से या दही से या उर्द की दाल के साथ अथवा शहद से या घी से नहीं खावे । वाग्भट्टने गुड़ से भी निषेध कहा है ॥

(११) मत्स्यैः सहेक्षुविकारान् ।

(१२) गुडेनकाकमाचीम् ।

(१३) मधुनामूलकम् ।

(१४) गुडेन वाराहं मधुना च सह विरुद्धम् ॥

(१५) भक्षयित्वाहरितकंमूलकादिपयस्त्यजेत् ।

(१६) आम्रजांबवश्वविच्छूकरगोधाश्च सर्वां
श्चमत्स्यान् विशेषेण चिलमिलं पयसा

(१७) कदलीफलंताड़फलेन पयसादध्नातक्रेणवा

(१८) लकुचफलंपयसादध्नामाषसूपेनवा मधु-
ना घृतेन च (माषसूपगुड़क्षीरदध्या-
ज्यैर्लाकुचं फलम्)

(१९) पहले या पीछे कभी भी बड़हल के फल को खाके दूध नहीं पीवे ॥

(२०) शहद और कमल का वीज एक साथ विरुद्ध है। द्राक्षासव और खजूर का आसव ये भी एकत्र विरुद्ध हैं। मन्थ है अनुपान जिस का ऐसा क्षैरेय (दूध का पदार्थ) और कड़ुवेतेल से बना हुआ हारिद्रशाक ये भी विरुद्ध हैं ॥

कर्मविरुद्ध भोजन

(२१) कबूतर को सरसों के तेल से भून कर न खाय ॥

(२२) कपिंजल, मोर, लवा, तीतर, और गोह इन को अरण्ड की लकड़ी से भूनकर या अरण्डी के तेल से तल के न खाय

(२३) कांसे के पात्र में दशरात्रि तक धरे हुए घी को न खाय और शहद को गर्म वस्तुओं के गर्म पात्र में धर कर न खाय

(२४) जिस पात्र में मछली या अदरक पका हो उस में मकोय के शाक को पकाकर न खाय ॥

(१९) प्राक्पयसःपयसोऽन्तेवा ॥

(२०) मधुपुष्करवीजंच मधुमैरेयशार्करम्
मंथानुपानःक्षैरेयोहारिद्रः कटुतैलवान्

(२१) कपोतान्सर्षपतैलभ्रष्टान्नाद्यात् ॥

(२२) कपिंजलमयूरलावतित्तिरिगोधाश्चैरण्ड-
दार्व्वग्निसिद्धाऐरण्डतैलसिद्धात्रानाद्यात्

(२३) कांस्यभाजनेदशरात्रिपर्य्युषितं सर्पिर्म-
धुचोष्णैरुष्णो वा ॥

(२४) मत्स्यपरिपचनेशृंगवेरपरिपचनेवासि-
द्धां काकमाचीम् ॥

(२५) तिलों के कल्क में पोई के शाक को पका के न खाय

(२६) सूअर की वसा से भुने हुये बलाका के शाक को नारियल के साथ खाने से मनुष्य शीघ्र मर जाता है ॥

(२७) भास पक्षी (एक प्रकार का मुर्ग) के मांस को अंगारों में भूनकर न खाय ॥

मानविरुद्धभोजन

(२८) शहत, घी, वसा, तेल और पानी में सब एकट्ठे या दो दो या तीन २ इकट्ठे समभाग वाले आपस में विरुद्ध हैं और विषम भाग वाले शहत घी में अनुपान से

दिव्यजल (वर्षा का धारा जल) विरुद्ध है

(२९) शहत और पानी अथवा सहत और घी तोल में बराबर लेकर न खावे

---

(२५) तिलकल्कसिद्धमुपोदिकाशाकम् ॥

(२६) नारिकेलेनवराहवसापरिभृष्टांबलाकां

भ्रष्टावराहवसयासैवसद्योनिहन्त्यसून् ॥

(२७) भासमङ्गारशूल्यंनाश्नीयादिति ॥

(२८) मधुसर्पिवसातैल पानीयानिद्विशस्त्रिश:

एकत्रवासमांशानि विरुध्यंतेपरस्परम्

भिन्नांशेअपिमध्वाज्येदिव्यवार्य्यनुपानत:

(२९) मध्वम्बुनीमधुसर्पिषी मानतस्तुल्येना-

श्नीयात् ।

(३०) तेल और घी (तेल चर्वी) (तेल मज्जा) (घी चर्वी) (घी मज्जा) (चर्वी मज्जा) ये समभाग अथवा विशेष कर चर्वी जल के साथ समभाग मिला कर न खाय इसी भांति शहत और चिकनाई अथवा जल और चिकनाई को भी समभाग मिलाकर न पीवे ॥

क्योंकि विरुद्ध भोजनों को खाकर मनुष्य रोगी हो जाता है या इंद्रियों की दुर्बलता लहता है या मर जाता है परन्तु कसरती दीप्ताग्नि बलवान् परिश्रमी व तरुणमनुष्य को अनुकूलता से और अल्पता से विरुद्ध भोजन भी अनुकूल हो जाता है अर्थात् रोगजनक नहीं होता ॥

॥ स्वादु भोजन प्रशंसा ॥

(१) जिस पदार्थ को भोजन करने पर भी रुचि बनी

---

(३०) स्नेहौमधुस्नेहौ जलस्नेहौ वाविशेषा
दान्तरिक्षोदकानुपानौ ॥
व्याधिमिन्द्रियदौर्बल्यंमरणंचाधिगच्छति-
विरुद्धरसवीर्यादीन्भुंजानोऽनात्मवान्नरः ॥
सात्म्यतोऽल्पतयावापिदीप्ताग्नेस्तरुणस्य
च । स्निग्धव्यायामबलिनां विरुद्धंवितथंभवेत्
व्यायामशीलोबलवान्शिशुश्चस्निग्धोऽग्नि
मांश्चापिमहाशनैश्च प्राप्नोतिरोगान्न विरुद्धजा-
तानभ्यासतोचाल्पतयाचजन्तुः।१॥
(१) भुक्त्वाचयत्प्रार्थयतेभूयस्तत्स्वादुभोजनम् ।
सौमनस्यंबलं पुष्टिमुत्साहंहर्षणंसुखं ॥

रहे उसको स्वादु भोजन कहते हैं। ऐसा स्वादु भोजन मन को प्रसन्न करता है तथा बल उत्साह पुष्टि आनन्द और सुख को उपजाता है। अस्वादु भोजन विपरीत फलदायी होता है

॥ शीतोष्ण भोजन ॥

(२) अतिगर्म भोजन दस्तावर होता है इस से बल नष्ट करता है और अति ठण्डा या सूखा भोजन बात कफ कारी होने से देर में पचता है और अतिक्लिन्न भोजन करने से अरुचि हो जाती है अतः युक्ति के साथ न बहुत गर्म और न बहुत ठण्डा भोजन करे ॥

जलपान विधिः

(१) जो मनुष्य भोजन के साथ थोड़ा २ पानी युक्ति से पीते हैं उन का शरीर सम रहता है और जो भोजन की अंत में पानी पीते हैं उनकी मेदा बढ़ कर शरीर को स्थूल कर देती है और जो भोजन के पहले पानी पीकर पुनि भोजन करते हैं वह मनुष्य कृश दुर्बल हो जाते हैं।

स्वादुसंजनयेदन्नमस्वादुचविपर्ययम् ॥
(२)नचातिशीतंभुंजीत नात्युष्णंभोजनेहितम् ॥
कुर्याद्वातकफौशीतमुष्णंभवतिसारकम् हा०पु०२३
अत्युष्णान्नंबलंहन्ति शीतंशुष्कंचदुर्जरम् ।
अतिक्लिन्नंग्लानिकरं युक्तियुक्तंहिभोजनम् ॥
आ० वि० सू० अ० ३५

(१) समस्थूलकृशाभक्त मध्यांतप्रथमांबुपाः
वा० सू० अ० ५

भोजन के साथ पानी पीने से यह तात्पर्य नहीं कि और २ पर पानी पीवे किन्तु भोजन करने में दो तीन वार पानी पीना हितकारक होता है ॥

(२) भावमिश्र लिखते हैं कि अधिक पानी पीने से अन्न नहीं पचता और पानी कम पीने या न पीने से भी अन्न नहीं पचता तिससे जठराग्नि बढ़ाने के लिये उचित है कि थोड़ा २ पानी कई वार पीवे पुनि भोजन करने के आध घंटा पीछे कुछ पानी पी लेवे इस से अन्न का परिपाक अच्छी भांति हो जाता है अन्यथा विकार करता है

(३) और भी लिखा है कि अजीर्ण (कुपच) हो जाने पर जल औषधि है क्योंकि अजीर्णदोष को पचाता है और अन्न के पचाव पर पानी पीना बलदायक होता है और भोजन के साथ २ पानी पीना अमृत के समान बल पुष्टिकारक होता है और केवल भोजन के अंत ही में पानी पीना विष के समान फल देता है ॥

भोजन के साथ जल पीने का प्रमाण

(४) आमाशय (कोठा या मेदा) कि जिस में भोजन किया हुआ पदार्थ प्रथम जाकर इकट्ठा होता है उस के चार

अश्वितश्चोदकंयुक्त्या भुंजानश्चान्तरापिबेत् । सु० सू० अ० ४६

(२) अत्यंबुपानान्नविपच्यतेन्नंनिरम्बुपानाच्च स एव दोषः ॥ तस्मान्नरो वन्हिविवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वारिपिबेदभूरि ॥ भावमिश्रः ॥

(३) अजीर्णेभेषजंवारिजीर्णेवारिबलप्रदम् । भोजने चामृतंवारिभोजनांते विषंपयः ॥

भाग कर दो भागों को अन्न शाकादि और तीसरे भाग को पानी से पूरित करे और चौथाई भाग को पवन संचार के लिये खाली छोड़ देने से कोई रोग उत्पन्न नहीं होता ॥

जल पीने के नियम

(१) पानी को बैठकर तीन उसांस में पीवे एक उसांस में कदापि नहीं पीना चाहिये ।

(२) खड़े होकर या निराहार मुख पानी कभी न पियो

(३) शरीर में जब पसीना आ रहा हो या कहीं से चल कर आये हो उस दशा में क़दापि नहीं पियो ॥

(४) लेटे २ पानी पीने से किसी नस या पसली में पानी उतरने का डर रहता है ॥

(५) चित्त लेट कर पानी पीने से दुर्बलता और मंदाग्नि हो जाती है ॥

(६) पाखाने जाने के पीछे पानी पीने से बहुमूत्र का रोग हो जाता है तथा पेट चलने लगता है ॥

(७) कई कुओं का पानी मिला कर पीना अहित है ॥

(८) विना प्यास पेट में बहुत पानी भर लेना हानि कारक है ॥

(९) जब प्यास लगे तब ही जल पिये ॥

आचमन और खरका

(१) उपरोक्त विधि से भोजन कर पुनि कुछ रूखा पदार्थ

---

(४) अन्नेनकुक्षेर्द्वावंशौपानेनैकंप्रपूरयेत् ।
आश्रयंपवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत् ४६
सु० सू० अ० ८

(१) एवंभुक्त्वासमाचामेद्रूक्षग्रहणपूर्वकम् ।
भोजनेदन्तलग्नानि निर्हृत्याचमनंचरेत् ॥

खा आचमन करे क्योंकि भोजनान्त में मीठा पदार्थ खाकर भोजन समाप्ति कहा है और मीठे पर पानी पीने से खांसी होने का सम्भव रहता है और आचमनमात्र जल पीना इस लिये कहा कि भोजनान्त में बहुत जल पीना विष सम होता है। बहुतेरे इस के यथार्थभाव को न समझ एक लोटा जल पीकर आचमन करते हैं। आचमन के बाद शुद्ध जल से मुख धो और जो कुछ दांतों की सन्धियों में उच्छिष्ट लगा हो उसे धीरे २ सोने या चांदी या तांबा आदि की सूक्ष्म मुख सलाई से या लकड़ी या बांस के तृणका से जिसे खरका कहते हैं निकाल कर कुल्ला कर डाले खरका करने से मुख में दुर्गन्धि नहीं आती और न दांतों में कृमि लगते हैं। यदि किसी अन्न का सूक्ष्म कण दांतों की सन्धियों में से न निकले तो उसे बहुत न खरोंचे क्योंकि ऐसा करने से दांत निर्बल और सन्धि युक्त होजाते हैं।

(१) भोजन के पीछे जब हाथ मुंह धोले उस समय दोनों गीली हथेलियों को आपस में घिस कर नेत्रों से लगावे ऐसा कई वार करने से नेत्रों में तिमिर आदि रोग जाते रहते हैं।

(२) हारीत मुनि लिखते हैं कि भोजन के पीछे आचमन

दन्तान्तरगतंचान्नं शोधनेनाहरेच्छनैः ।
कुर्यादनाहृतं तद्धिमुखस्यानिष्टगन्धताम् ॥२॥
दन्तलग्नमनिर्हार्य्यंलेपंमन्येतदन्तवत् ।
नतत्रबहुशःकुर्य्याद्यत्नंनिर्हरणंप्रति ॥३॥ सु० मू० अ० ४६

(१) भुक्त्वापाणितलं घृष्ट्वाचक्षुषोर्यदिदीयते ।
जातारोगाविनश्यन्ति तिमिराणितथैवच ॥

(२) भुक्त्वोपरिसमाचम्य मार्जयेद्दक्षिणाकरैः ।
पुनर्दक्षिणहस्तेन मार्जयेदुदरंसुधीः ॥१॥ अ०

कर दाहिने हाथ से मुख को शुद्ध कर पीछे गीले दाहिने हाथ को पेट पर फेरने से अन्न का परिपाक अच्छी भांति होता है।

(१) और भी लिखा है कि जो मनुष्य प्रतिदिन तीन बार शीतल जल से मुख को भर कर कुलकुला कर कुल्ला करता है और दोनों नेत्रों में भी शीतल जल से छींटा देता है उस के दुखदायी नेत्रों में पीड़ा कदापि नहीं होती।

(२) मनु जी लिखते हैं कि भोजन के पहिले तथा पीछे आचमन करै और भोजनांत में शुद्ध जल से नाक कान आंख इन छओं छिद्रों को धो डाले॥

भोजनांतकृत्य

(३) अन्न के पचने पर वायु और विदग्ध होने पर पित्त तथा भोजनांत में कफ बढ़ता है अतः भोजनांत के पीछे बढ़े हुए कफ को निकालना उचित है।

कफ निकालने की रीति

(४) भोजनांत का बढ़ा हुआ कफ धूम्रपान से या मनो-

---

(१) शीताम्बुपूरितमुखःप्रतिवासरंयः कालत्रयेण नयनद्वितयंजलेन ॥ ग्रासिंचतिध्रुवमसौनकदाचिदक्षि रोगव्यथाविधुरतांभजतेमनुष्यः ॥१॥

(२) उपविश्यद्विजोनित्य मन्नमद्यात्समाहितः। भुक्त्वाचोपस्पृशेत्सम्यगद्भिःखानिचसंस्पृशेत् १ मनु

(३) जीर्णेऽन्नेवर्द्धतेवायु र्विदग्धेपित्तमेवतु भुक्तमात्रेकफश्चापि तस्माद्भुक्तेहरेत्कफम् ॥ सु० चि० अ० ४६

(४) धूमेनापोह्यहृद्यैर्वा कषायकटुतिक्तकैः। पूगकक्कोलकर्पूर लवंगसुमनःफलैः॥ ताम्बूलपत्रसहितैः सुगंधैर्वाविचक्षणः॥ सु० चि० अ० ४६

हर पदार्थों के सेवन से या कसैले चर्चरे कडुवे पदार्थों के चाबने से या सुपारी कंकोल कपूर लोंग जायफल जावित्री युक्त ताम्बूल खाने से अथवा मुखशोधक मसालों से या इलायची आदिक सुगन्धित पदार्थों के खाने से शान्त होता है ॥

तांबूल का खाना

तांबूल का खाना प्राचीन समय से भारतवर्ष में प्रचलित है और इसे यहांवाले बहुत उत्तम गुणकारी समझते हैं।

(१) तांबूल का खाना स्त्रीप्रसंग के समय स्नान के पीछे सो के उठ कर भोजन के उपरान्त और वमन होने के पीछे तथा सभा के बीच राजा की आज्ञा से उचित है।

(२) परन्तु बहुधा मनुष्य एकदेशिक बात पर आरूढ़ हो कर कि ताम्बूल विशेष गुणकारी है इसे दिन रात चबाते ही रहते हैं इस विषय में सुश्रुत जी लिखते हैं कि अधिक पान कदापि नहीं खावे विशेषतः मल त्याग के समय और भूख लगने पर खाना तो अनुचित ही है क्योंकि बहुत पान चबाते से नेत्र बाल दांत और कानों में विकार और शरीर का रङ्ग बदल जाता है बल का नाश होता है शोष रोग पित्त का कोप वातरक्त का विकार और मन्दाग्नि हो जाती है ॥

---

(१) रतौसुप्तोत्थितेस्नाते भुक्तेवांतेचमानवे।
सभायांविदुषांराज्ञां कुर्यात्ताम्बूलचर्वणम् ॥
सु० चि० अ० २४

(२) ताम्बूलंनातिसेवेत नविरिक्तोबुभुक्षितः।
देहदृक्केशदन्ताग्नि श्रोत्रवर्णबलक्षयः।
शोष पित्तानिलास्रस्या द्अतिताम्बूलचर्वणात्।
सु० चि० अ० २४

तांबूल का त्याग

(१) रक्त पित्तवाला-घाव से दुर्बल-तृषा और मूर्छा रोगी रूक्ष-दुर्बल और मुखशोषी को पान खाना अहित है।

(२) और भी लिखा है कि आई हुई आंखों में रक्त पित्त में घाव में उष्णवात में विष और शोष रोग में पान खाने से अवगुण होता है।

तांबूल के गुण

(३) साधारण तरह के पान गर्म, रोचक, कसैला और दस्तावर होता है मुख को स्वच्छ सुगन्धित और सुन्दर करता है तथा हनुग्रह (जबूकड़ीरोग) को नाश करता दन्तमल को दूर करता जीभ को शोधता मुखप्रसेक (लार) को दूर कर गले के रोगों को नाशता है।

(४) पुराना पान किंचित् कडुवा हलका और कफनाशक होता है। पका हुआ श्वेत पान अधिक गुण करता है।

---

(१) रक्तपित्तक्षतक्षीण तृष्णामूर्छापरीतिनाम्
रूक्षदुर्बलमर्त्यानां नहितंचास्यशोषिणाम् ॥
सु० चि० अ० २४

(२)ननेत्रकोपेनचरक्तपित्तेक्षतोष्णवातेनविषेनशोषे

(३) ताम्बूलमक्तंतीक्ष्णोष्णं रोचनंतुवरंसरम्
मुखवैशद्यसौगन्ध्य कान्तिसौष्ठवकारकम् ।
हनुदन्तमलध्वंसी जिह्वेन्द्रियविशोधनम् ।
मुखप्रसेकशमनं गलामयविनाशनम् ॥

(४) पर्णपुराणमकटु खल्लकंनतुपाटुरम् ।
त्रिशोषाद्गुणावद्वेद्य मन्यद्धीनगुणंस्मृतम् ॥

(१) नया पान मीठा कसैला भारी तथा कफकारी शाक के समान होता है।

(२) बंगला पान चर्चरा, दस्तावर, पाचक, पित्तवर्द्धक, गर्म, और कफनाशक होता है।

दिशावरी पान बंगला पान की अपेक्षा कुछ ठण्डा और मीठा होता है।

सुपारी के गुण

(३) सुपारी भारी शीतल रूखी कसैली कफ पित्त की नाशक मोहन दीपन रुचिकारक होती है तथा मुख की विरसता को दूर करती है।

(४) सुपारी का मध्यभाग कड़ा व चिकना होता है और त्रिदोष नाशक, सरस भारी और अभिष्यन्दी है अधिक सुपारी खाने से मन्दाग्नि हो जाती है। सुपारी कई जाति की होती है जैसे कालूगंज कलकतिया—माणिकचन्दी कालीपीठ जहाजी शंखापुरी आदि हैं। इन में जो मझोला और कोमल व मीठी होती हैं वह अच्छी गिनी जाती हैं॥

---

(१) नवंतद्देवमधुरं कषायानुरसंगुरु ।
वलासजननंप्रायः पत्रशाकगुणस्मृतम् ॥
(२) वंगदेशोद्भवंपर्णं परंकटुरसंसरम् ॥
पाचनंपित्तजनक मुष्णंकफहरंस्मृतम् ॥ निघण्टु ॥
(३) पूगंगुरुहिमंरूक्षं कषायंकफपित्तनुत् ।
मोहनंदीपनंरुच्य मास्यवैरस्यनाशनम् ॥
(४) पूगंस्याद्दृढमध्यंयत् स्निग्धंत्रापित्रिदोषनुत्
सरसंगुर्वभिष्यंदि तद्भृशंवह्निनाशनम् ॥

कत्था और चूना के गुण

(१) कत्था कफ पित्त नाशक और चूना वात कफ नाशक होता है अतएव इन दोनों का संयोग त्रिदोष शमन है तथा मन को प्रसन्न करता है ॥

बीड़ी बनाना

(२) साधारण दशा में पान के साथ कत्था चूना को समभाग लगाते हैं परन्तु इस के बनाने की रीति वैद्यकशास्त्र में इस भांति कही है कि प्रातःकाल के समय चूना व कत्था समान भाग लगावे और सुपारी के दुहरे कुछ अधिक रक्खे दुपहर के समय कत्था को अधिक और चूना सुपारी को समभाग इ-सी भांति रात के समय चूना का कुछ भाग अधिक रख सुपारी व कत्था को समान रक्खे । ऐसी बीड़ी को सदैव खावे ॥ पान लगाते समय उसे जल से स्वच्छ कर कपड़े से पोंछ उस की डंडी व फुनगी तोड़ कर काम में लावे ॥

(३) पान की जड़ (डठुरा) खाने से रोगिल हो जाता है फुनगी चावने से दुःख मिलता है और (उस की मोटी नसें जो बीच में होती हैं) उस के खाने से बुद्धि विगड़ जाती है । एवं पान को मींज कर चवाने से आयु घटती है लोकोक्ति भी है कि पान की मकड़ी—चूना की कंकड़ी—कत्था की लकड़ी और सुपारी की बकली त्याग कर पान की बीड़ी खाना चाहिये ।

---

(१) खदिरःकफपित्तघ्नश्चूर्णंवातवलासनुत् ।
संयोगस्तुत्रिदोषघ्नं सौमनस्यंकरोतिच ॥ निघण्टु

(२) प्रभातेपूगमधिकं मध्यान्हेखदिरंतथा ।
निशासुचूर्णमधिकं तांबूलंभक्षयेत्सदा ॥

(३) पर्णमूलेभवेद्व्याधिः पर्णाग्रैःपापसंभवम् ।
पूर्णचूर्णंहरत्यायुः शिराबुद्धिविनाशिनी ॥ निघण्टु

अन्यमसाले

(१) शुद्ध कपूर—जावित्री कंकोल लौंग इलायची शीतलचीनी केशर आदि ऋतु और प्रकृति के अनुसार चूना कत्था सुपारी के साथ काम में लावे—

बीड़ी खाने की विधि ॥

(२) इस भांति से बनी हुई बीड़ी को मुख में रख किञ्चित् चबा कर पहिली पीक जो विष के समान होती है थूक दे फिर दूसरी पीक भी जो दुर्जर और भेदी होती है थूक दे इस के पीछे तीसरी पीक से फिर बराबर पीकें लीलता जावे क्योंकि ये पीकें अमृत समान गुणदायक और रसायन हैं लोकोक्ति भी है ॥

तेरह गुण ताम्बूल में नीबू में गुण बीस ।
सोलह औगुण आम में इमली में बत्तीस ॥

यथा

तांबूलंकटुतिक्तमिष्टमधुरं क्षारंकषायान्वितम् ।
वातघ्नंकफनाशनंक्रिमिहरं दुर्गन्धिनिर्नाशनम्॥
वक्त्रस्याभरणंविशुद्धिकरणं कामाग्निसंदीपनम्
तांबूलस्यसखेत्रयोदशगुणाः स्वर्गेपितेदुर्लभाः ।१।

---

(१) कर्पूरजातिकक्कोल लवंगकटुकाह्वयैः ।
सचूर्णपूगैःसहितं पत्रंतांबूलजंशुभम् ॥
(२) आदौविषोपमंपेयं द्वितीयंभेदिदुर्जरम् ।
तृतीयादिसुपातव्यं सुधातुल्यंरसायनम् ॥ १ ॥

सु० चि० अ० २४

तमाखू

तमाखू भरतखण्ड की प्राचीन वस्तु नहीं है इसी से इस के गुण प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में नहीं मिलते परन्तु वैद्यकशास्त्र में धूम्रपान विधि देख कर यह न समझना चाहिये कि तमाखू इसी देश की वस्तु है। वैद्यकशास्त्र में धूम्रपान विधि निःसन्देह है परन्तु वह अनेक वस्तुओं का है तमाखू का नाम मात्र भी नहीं। अतः तमाखू इस देश की वस्तु नहीं है। अब रहा यह कि तमाखू कब कैसे किस के द्वारा भरतखंड में आई इस का वर्णन ठीक २ हम नहीं जानते परन्तु सब से प्राचीन वर्णन अकबर बादशाह के समय के इतिहासों में मिलता है। जब अमेरिका महाद्वीप को पहले पहल सर करने वाले कोलंबस साहब के द्वारा हमें आलू के साथ तमाखू मिला है। इस में कुछ सन्देह नहीं। कोलंबस साहिब ने अमेरिका वालों से हिल-मिल कर तमाखू और आलू का व्यवहार सीखा-जब वह अपने स्पेन देश में लौटे तब अपने देश में बोने के लिये आलू और तमाखू भी ले गये। आलू खाने और तमाखू पीने का शौक वहां पर खूब ही बढ़ा। एक दिन कोलंबस साहिब अपने मुख से तमाखू का धुंआ निकाल रहेथे कि अचानक उन का नया नौकर घर से आया और साहब के मुख से धुंआ निकलते देख अपने मन में विचारने लगा कि साहब के पेट में आग लग गई है क्योंकि उस ने इस से पहिले तमाखू पीते किसी को नहीं देखा था सो वह एक डोल पानी ले कर साहब पर पानी डालता हुआ पुकारने लगा कि आग आग यह सुन कर बहुत से लोग एकट्ठे हो गये तब उन सब को कोलंबस साहब ने तमाखू का गुण बतलाया तब से यूरोपवासी मनुष्य चुरट सिगार के रूप में तमाखू का सेवन करने लगे धीरे २ यूरोप के मुसलमानों ने भी इस का व्यवहार किया और आफ्रिका मिसर मराको में

भी इस की खेती होने लगी ॥ स्पेन वालों ने अपने राज्य फि-लिपाईन वगैरह में भी इस का प्रचार बढ़ाया ॥ अकबर बाद-शाह के सभासद असदवेग जो पारसी भाषा के एक महान् लेखक व पण्डित थे उन दिनों भारत के दक्षिण में बीजापुर का स्वाधीन राज्य था वहां की राजकन्या से अकबर ने अपने पुत्र का विवाह स्थिर करने को सन् १६०४ ई० में असदवेग को भेजा। बीजापुर से लौटती समय इस ने अपने बादशाह को भेंट देने के लिये अनेक वस्तुएं संग्रह कीं उन में एक तमाखू भी थी असदवेग की एक पुस्तक अब तक वर्त्तमान है जिस में उसने अपने बीजापुर गमन तथा प्रत्यागमन का सब हाल लिखा है। असदवेग लिखते हैं कि बीजापुर में मैंने तमाखू पहले पहल देखा भारतवर्ष में यह वस्तु कभी देखी न सुनी थी मैंने नई वस्तु समझ इसे भी संग्रह किया। और उस का धुआं पीने के लिये प्राचीनदेश से आया हुआ एक सोने का नल ख़रीदा और उस नल को जवाहिरात से ख़ूब जड़वा के नल के मुख पर यमनी पत्थर लगाया—आदिलखां ने पान सुपारी रखने को मुझे एक बहुमूल्य बटुआ दिया परंतु मैंने उस बटुए को तमाखू से खूब भरा यह तमाखू बहुत सुन्दर बढ़िया थी जो पत्ते की एक ओर आग लगाने में ही आप ही जलने लगती थी यह मैंने अकबर की भेंट की बादशाह ने पूछा यह क्या है। खानआजम ने कहा कि हुज़ूर यह तमाखू है और म-क्कामदीना शरीफ़ में भी है तब बादशाह ने एक चिलम भ-रने को कहा मैंने भरी बादशाह धूमपान करने लगे और खानआजम को पीने का हुक्म दिया और पसारी अत्तारों को बुला कर पूछा उन लोगों ने कहा हुज़ूर हमारी पुस्तकों में इस वस्तु का न नाम है न गुण परन्तु इस का नल चीन

से आता है और यूरोप के डाक्टर लोग इस की बड़ी प्रशंसा करते हैं । हकीमों ने बादशाह को रोका और धूमपान की निन्दा की तब मुल्ला बुलाया गया मौलाना ने आकर तमाखू की बड़ी ही तारीफ़ की हक़ीम जी चिढ़ गये मैंने बहुत युक्तियों से प्रशंसा की वह बादशाह ने पसन्द की क्रमशः मैंने तमाखू की भेंट सब अमीर उमरावों को दी तमाखू सब में प्रचलित हुआ तब तो दुकानदार लोग उसे बेंचने लगे और प्रजा में भी इस की रिवाज बढ़ी । परन्तु बादशाह ने तमाखू पीने पर भी उस की आदत नहीं डाली इस ऊपर के लेख से मालूम होता है कि यूरोपियनों में उस समय तमाखू का प्रचार हो गया था सम्भव है कि पुर्त्तगाली लोग ही इसे चीन की राह से दक्षिण में लाये हों और दक्षिण से वह उत्तर में पहुंचा उस समय मुसलमानों में अमेरिका भी चीन आचीन नाम से विख्यात था धीरे २ मुसलमानों से हिन्दुओं में भी तमाखू आ पहुंचा । अकबर के पीछे जहांगीर की तमाखू पर बड़ी तेज निगाह रही क्योंकि जहांगीरनामे में उन्हों ने लिखा है कि तमाखू से प्रजा का शरीर और मन नष्ट होता है अतः हमने इस का व्यवहार बन्द कर किया—

पारस के शाह अनाल ने भी यही हुक्म दिया है पर खान् आलमने तमाखू पीने की बुरी आदत अब भी नहीं छोड़ी । जहांगीर के समय में तमाखू का नाम बजूभङ्ग (बजर भांग) पड़ गया था—

हुक्का शब्द पहले डब्बे का अर्थ देता था पर पीछे धूमपान का पात्र हुआ । यूरोपियन मुसलमान तमाख़ू पीने के नल को कलियान तथा उस की टोपी को चिलल वा लिली हुई कली कहते थे उस के पीछे तमाख़ू कुछ लोगों में फैलता

आता था और कुछ लोगों में अब की भांति उस का अनादर था। साधु फकीर लोग भी इस की निन्दा तथा प्रशंसा की यथारुचि कविता करने लगे और इसे राधाकृष्ण का प्यारा कह कर खाने और पीने लगे सब की देखा देखी पण्डितजन भी इस के प्रेमी बने और संस्कृत साहित्य में तमाखू ८ ता- माकुः तमाल, तालकूटं, तमीपत्रं, श्रुति, स्मृति नामों से क- विता पर आरूढ़ हुये और उसके माहात्म्य को रच कर पुस्तकों में लिख दिया किसी ने अन्य श्लोक उसके प्रभाव के लिखडाले-

पुरापृष्टवानब्जयोनिंबिडौजा,
जगत्सागरेसारभूतंकिमस्ति ॥
चतुर्भिर्मुखैरित्युवाचविधाता,
तमालं तमालं तमालं तमालम् ॥ १ ॥

दर्शनात्पापहर्त्तारं श्रवणात्तापनाशनम्, ।
स्पर्शनात्स्वर्गदातारं भक्षणात्सुखदायकम् ॥
धूमपानादर्थसिद्धि घ्राणाद्बुद्धिप्रदायकम् ।
विनातमालपत्रेण मन्त्रसिद्धिर्नजायते। इत्यादि

एक समय इन्द्र ने ब्रह्मा से पूछा कि जगतीतल में सार क्या है तब ब्रह्मा ने चारों मुखों से वार २ तमाखू को ही सार बताया। किसी ने तमाखू देखने से पापनाशन, सुनने से ताप नाशन, छूने से स्वर्गप्रद, खाने से सुखदाता, पीने से अर्थप्रद सूंघने से बुद्धि दायक बताई—किसी ने बिना तमाखू खाये हुए मन्त्र सिद्धि ही न रक्खी - इत्यादि लीलाविस्तारितकां-

भाषा वाले इस को सुरती (याद आते ही खाने को जी चाहता है) कह कर पुकारने लगे तमाखू या तमाकू शब्द अ- मेरिका का है जो अमेरिका के टिम्बकटू नगर में पैदा होने

से टिग्राकूटू नाम पड़ा जिस का अपभ्रंश अंगरेजी में टुवा को और हिन्दी में तम्बाकू होगया ।

तमाखू के विषय में एक प्रश्नोत्तर जहांगीर के समय का चला आता है—एक महाशय ने तमाखू से पूछा कि तूं कौन है भाई ! । (उ०) मैं तमाखू हूं । यहां कैसे आया । (उ०) तुम्हें मालूम नहीं कि अब श्रीकलियुग महाराज का राज्य है और उधर ब्रह्मा जी ने मनुष्यों को पृथक् २ बनाया वे किसी तरह एक नहीं होते थे सो उन्हें एक करने के लिये श्रीमहाराजकी आज्ञा पाकर द्वीपान्तर (अमेरिका) से आया हूं ॥

परन्तु आज कल इस का प्रचार ऐसा बढ़ा हुआ है कि विरले हीं इस से बचे होंगे वरना कोई खाता और कोई पीता और कोई सूंघता है ॥

ताबूल खाने वाले तो कदाचित् ही ऐसे होंगे जो इस को न खाते हों उनका कथन भी यही है कि विना तमाखू के बीड़ी में लज्जत नहीं आती और बहुतेरे तो ऐसे हैं जो विना तांबूल के मुंहभर कर भकोसते रहते हैं । परीक्षा से अच्छी भांति निर्णय होचुकाहै कि तमाखू खानेसे दांत, आंख, मस्तिष्क, निर्बलपड़जातेहैं तथा बुद्धि मन्द होजाती है और सोने में वह ठोरता (घुर्राता) अधिक है क्योंकि यह फेंफड़ा और हृदय को दूषित कर देती है । एक अच्छे डाक्टर का कथन है कि तमाखू खाने वाले की आयुस्वाभाविक आयु से पांच वर्ष कम होजाती है ॥

(१) भोजन करने के पीछे जब तक अन्न की ग्लानि रहे तब तक राजा की भांति बैठे अर्थात् उस समय तक कोई काम

(१) भुक्त्वाराजवदासीतयावदन्नक्रमोगतः ।
ततःपदशतंगत्वा वामपार्श्वेतुसंविशेत्-
स० सू० अ० ४६

काज दौड़ धूप न करे और नचित्त को वांटै वलकि सौ पग धीरे २ टहले क्योंकि उदर के भीतर ऊपर वाले भाग में एक चमड़ेकैसी थैली होती है जिसे आमाशय (क़ोफ़ मिड़दा) कहते हैं जो कुछ खाया जाता है वह पहले उस में जाता है उसथैली में दो छेद होते हैं एक छेद में होकर भोजन आताहै और दूसरे में होकर निकलता है वह थैली अपने आप हिलती डुलती है जिस से भोजन के परि पक्क होने में सहायता मिलती है चिन्ता शोक करने से उस की गति में अंतर पड़ने से अन्न का परिपाक दूषित हो जाता है मेदगति टहलने से अन्न-का संमूह ढीला हो जाता है तथा थैली की गति कुछ बढ़ जाती है जिस से रसादिक शुद्ध वनते हैं और ग्रीवा जानु कटि को सुख मिलता है इसी सिद्धान्त पर वाग्भट्ट जीने आमाशय का चौथाई भाग पवनादि संचार के लिये तथा हिलने के समय भोजन को अवकाश मिलने के लिये खाली छोड़ने के लिये लिखा है इसी प्रकार भोजन के पीछे दौड़ने से उस में अधिक ढक्का लगने से रस वनने में विपरीतता होकर मृत्यु दायक रस हो जाता है जैसा आगे हारीत ने लिखा है। पीछे कोमल सेज पर सीधा कम से कम आठ स्वांस तक लेटै पुनि सोलह स्वांस लेने तक दहिनी करवट लेटे और फेर ३२ स्वांस आने तक वांई करवट लेटै उस के पीछे जिस तरह लेटने में सुख मिले वैसा लेटै परन्तु जल्दी २ करवट वदल कर लेटना विशेष गुण करता है।

श्वासानष्टौसमुस्तांस्तान् द्विःपार्श्वेतुद-क्षिणे । ततस्तद्द्विगुणान्वामे पश्चात्स्वप्याद्यथासुखम् ॥ भावमिश्रः

(१) हारीत मुनि लिखते हैं कि भोजन के पीछे बैठे रहने से मुटापा व आलस्य चढ़ता है और सीधा लेटने से बल तथा बाईं करवट लेटने से आयु बढ़ती है एवं दौड़ने से मृत्यु पीछे दौड़ता है ॥

(२) सुश्रुत जी का सिद्धान्त है कि उस समय लेट के सुन्दर सुहावन बोलने वाली चिड़ियों के शब्द या अपने प्रिय बच्चों की मीठी २ बातें या उत्तमबाजों का शब्द या सुन्दर गान सुने कि जिस से चित्त की विभ्रमता शोक और चिन्ता दूर होती है तथा सुन्दर रूप (चित्र लेख आदि) देखे और लेटे २ ही सुन्दर स्वादिष्ट वस्तुओं का रस जैसे पान इलायची अनार आदि का रस चूसे या सुगन्धित इत्र फूल आदि को सूंघे या कोमल २ वस्तुओं का स्पर्श करे इत्यादि कर्मों से अन्न पचने के समय किसी प्रकार की ग्लानि मन में उत्पन्न नहीं होती मन प्रसन्न होता है त्वचा में कोमलता और यथार्थ रक्त सञ्चालन होकर अन्न भली भांति आमाशय में ठहर पच जाता है

(३) निन्दित शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध के सेवन से अथवा बुरे अन्नादिक भोजन करने से या बहुत हसने से वमन हो जाता है ।

---

(१) भोक्तोपविशतिस्थौल्यंबलमुत्तानशायिनः । आयुर्वामकटिस्थस्यमृत्युर्धावतिधावति ४३ हा० अ० २३

(२)शब्दरूपरसान्गन्धान् स्पर्शांश्चमनसःप्रियान् । भुक्तवानुपसेवेततेनान्नं साधुतिष्ठति ॥

(३) शब्दरूपरसस्पर्शगंधाश्चापि जुगुप्सितान् ।

अङ्गरेज़ी कहावत यों है—कि

आफ्टर डिनर सिट् ए ह्वाइल

आफ्टर सपर वाक् ए माइल

दिन के भोजन के पीछे एक लहमा ही बैठ ले और राति के भोजन के पीछे शनैः २ एक मील टहले ॥

(१) भोजन के पीछे दो घड़ी तक कसरत स्त्री प्रसंग करना दौड़ना घमण्ड के नशे में डूबजाना लड़ना गाना पढ़ना सोना उकुरूं बैठना आग से तापना धूप में बैठना पानी में तैरना पतली चीज़ों का अधिक पीना हाथी घोड़े ऊंट गाढ़ी आदि पर चढ़ाना या मार्ग चढ़ना वर्जित है ॥

(२) क्योंकि भोजन या पान के पीछे श्रम करने से ज्वर आजाता है या छर्दि हो जाती है ऐसी कसरत या स्त्री प्रसंग से शरीर पर निश्चय विपत्ति आती है। ऐसे ही दौड़ने लड़ने

अशुच्यन्नंतथाभुक्त मतिहासंचवामयेत् ॥

सु० सू० अ० ४६

(१) व्यायामंचव्यवायंच धावनंमानमेवच ।
युद्धंगीतंचपाठंच मुहूर्तंभुक्तवांस्त्यजेत् ॥
शयनंचासनंचाति नभजन्नद्रवाधिकम् ।
नाग्न्यातपौनप्लवनं नयानंवापिवाहनम्॥ सु०सू० अ० ४६

(२) श्रमात्तुभोजनं यस्तुपानंवाकुरुतेनरः ।
ज्वरःसंजायतेतस्य छर्दिर्वातत्क्षणाद्भवेत् ३८
कृत्वातुभोजनंसद्यो व्यायामंसुरतंतथा

गाने पढ़ने उकरूं बैठने तैरने सवारी पर चलने से आमाशयस्थ भोजन उलट पुलट हो कर भले प्रकार नहीं पचता है ॥

॥ दिन का सोना ॥

(१) हारीत का मत है कि दिन में कदापि नहीं सोवे किन्तु भोजन के पीछे आराम करे लोकोक्ति भी है कि खा के पर रहै मार के भाग जाय ॥ दिन के सोने से कफ़ बढ़ता हैं शरीर सुस्त पड़ जाता है श्लेष्मा (सरेखमा जुकाम) पीनस, क्षय शोथ शिरपोड़ा मन्दाग्नि हो जाती है । दिन का सोना केवल ग्रीष्म ऋतु में श्रेष्ठ माना गया है ॥

(२) क्योंकि ग्रीष्म ऋतु में वायु का सञ्चय होता है और आदान से रूखायन होजाता है तथा रात्रियां छोटी होने के कारण पूरी नींद नहीं आसकती अतः ग्रीष्म ऋतु में दिन का सोना श्रेष्ठ माना गया है अन्य ऋतुओं में दिन के सोने से पित्त कफ ये रोग बढ़ते हैं परन्तु जिस मनुष्य को दिन के सोने

यःकरोतिविपत्तिःस्यात्तस्यगात्रस्यनिश्चितम् ॥
३९ हा० अ० २३

(१) दिवास्वापंनकुर्वीत भुक्त्वोपरि च विश्रमेत्
अकालशमनाच्छ्लेष्या प्रतिश्यायःप्रपीनसः ॥१॥
क्षमशोफशिरोर्त्तिश्च जायते चाग्निमन्दता ॥ हा०
दिवास्वापंनकुर्वीत यतोऽसौस्यात्कफावहः ।
ग्रीष्मवर्जेषुकालेषुदिवास्वापोनिषिध्यते ॥२॥
सु० सू० अ० ४६

(२) ग्रीष्मेवायुचयादानेरौक्ष्यरात्र्यल्पभावतः ।

का अभ्यास पड़ गया हो उस को थोड़ा अवश्य सोना चाहिये क्योंकि उसे न सोने से उसके शरीर में वातादि के दोष कुपित होजाते हैं ॥

दिन के सोने योग्य पुरुष

(१) कसरत से थका स्त्री प्रसंग किये हुये, मार्ग चला हुआ, सवारी से थकित, दुःखी, अतीसारी शूल, स्वास, प्यास, हिचकी, वातव्याधि रोग वाला धातुक्षीण या कफक्षीण, बालक, वृद्ध, नशैल रसाजीर्णी तथा रात्रि का जागा हुआ, निरशन व्रत का करने वाला मनुष्य दिन में सो सकता है ॥

(२) उपरोक्त मनुष्य को दिन में सोने से धातु की समता हो जाती है और बढ़ा हुआ कफ अङ्गों को पुष्ट करता है ॥

(३) यदि कार्यवश किसी मनुष्य को समय से अधिक

दिवास्वापोहितोऽन्यस्मिन्कफपित्तकरोहिसः ॥ वा० सू० अ० ७

(१) व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान्क्लान्तानतीसारिणः शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान्हिक्कामरुत्पीडितान् । क्षीणान्क्षीणकफान्शिशून्मदहतान्वृद्धान्रसाजीर्णिनो रात्रौजागरितान्नरान्निरशनान्कामन्दिवास्वापयेत् ॥ सु० शा० अ० ४

(२) धातुसात्म्यंतथाह्येषांश्लेष्माचाङ्गानिपुष्यति वा० सू० अ० ७ श्लो० ५९ ॥

(३) रात्रावपिजागरितवतांजागरितकालाद-

रात्रि को जागना पड़े तो वह प्रातःकाल स्नान कर विना भोजन किये जागरित समय का आधे समय सोलेने से रात का जागरण दोष शान्ति होजाता है ॥

दिन का स्त्रीप्रसंग

(१) दिन में स्त्रीप्रसंग करने से आयु घटती है अतः कदापि दिन में स्त्रीप्रसङ्ग नहीं करे केवल कामातुर होने पर ग्रीष्मऋतु या वसन्त ऋतु में स्त्रीप्रसङ्ग कर सकता है ॥

इस का विशेष वर्णन रात्रिचर्य्या में लिखा आवेगा ॥

छठा अध्याय

जल के वर्णन में

पंचतत्वों में जैसे वायु के विना जीवन कठिन है वैसे ही जल विना भी जीता नहीं रह सकता । आहार विना कुछ काल प्राण रक्षा हो सकती है परन्तु जल विना नहीं और यह भी सब जानते हैं कि भूंख मारने की अपेक्षा प्यास मारना अति कठिन है । मनुष्य पशु पक्षी कीट पतंग आदि जंगम जीव तथा वृक्ष लता गुल्म तृण आदि स्थावर पदार्थ भी विना जल के समूल नष्ट हो जाते हैं इसी से संस्कृत में इस के प्रधान नाम जीवन और अमृत हैं ॥ परन्तु जल मिलने पर भी उस का शुद्ध मिलना बड़ी आवश्यक वात है क्योंकि बुरे या विषीले जल

दुर्मिष्यते दिवास्वप्नः ॥ सु० शा० अ० ४

(१) आयुःक्षयभयाद्विद्वान्नाह्निसेवेतकामिनीम् । अवश्यंयदिसेवेततदाग्रीष्मवसन्तयोः ॥ भा० वि० अ० ३५

से जीवन का नाश ही समझिये। अशुद्ध जल के वर्त्तने से शरीर में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

परीक्षा से अच्छी भांति सिद्ध हो चुका है कि सर्व प्रकार के ज्वर और विशेष कर प्राकृत ज्वर जिसे डाक्टर मलेरिया ज्वर कहते हैं और विशूचिका-रक्तातीसार-आंव मरोड़ा श्लीपद-अन्त्रवृद्धि-प्रतिश्याम (नज़ला) आदि बहुत से रोग जल के ही विकार से पैदा होते हैं। प्रत्यक्ष देखते और सुनते चले आते हैं कि जब कोई देशांतर में जाकर रोगग्रसित होता है तो यही कहता है कि हम को वहां का पानी माफ़िक नहीं आया वहां का पानी अच्छा नहीं आब हवा खराब है। इत्यादि॥

जल की प्राप्ति

(१) सब से अधिक जल मेघों से मिलता है जिसे दिव्य जल कहते हैं वह दिव्य जल चार प्रकार का होता है एक धाराजल दूसरा करकाजल तीसरा तौषार जल और चौथा हैमजल कहाता है इन सब जलों में धाराजल श्रेष्ठ होता है।

धारा जल का वर्णन

(२) बादलों से जो पानी बरसता है वह धाराजल कहाता है। उस के भी दो भेद मुनियों ने माने हैं अर्थात् गांगजल और दूसरा सामुद्र जल। इन की पहचान इस प्रकार से है कि जिस धारापात जल में रंधे हुए चांवल (भात)

---

(१) दिव्यंचतुर्विधंप्रोक्तं धाराजंकरकाभवम्।
तौषारंचतथाहैमं तेषुधारंगुणाधिकम्॥
(२) आन्तरिक्षंतुद्विविधं गांगंसामुद्रिकं पयः।

डाल देने से ज्यों के त्यों बने रहें और बिगड़े नहीं वह गांग जल कहाता है अथवा उस जल में श्वेत कपास की जड़ या श्वेत धानों के भात का पिण्ड बनाकर डाल देने से जो वह श्वेत हो के निर्मल होजावे और पानी भी मैला न हो बल्कि पानी स्वच्छ होजाय तो उसे गाङ्ग जल समझना चाहिये ॥

(३) यह गाङ्ग जल अमृत के तुल्य बहुगुण युक्त पुण्य व आयुष्य का बढ़ाने वाला तथा सर्वरोग नाशक होता है एवं बल वर्ण वर्द्धक परम पवित्र हृदय को हित दीपन पाचन रुचि कारक मधुर पथ्यतम तथा लघु होता है तथा अन्तःकरण को शुद्ध कर बुद्धि को बढ़ाता है और त्रिदोषघ्न है और सब जलों में श्रेष्ठ है ॥

शाल्यन्नंयेनसंसिक्तं भवेदक्लेदिवर्णवत् ॥
तद्गाङ्गंसर्वदोषघ्नं ज्ञेयंसामुद्रमन्यथा ॥ २ ॥
शुक्लकर्पासमूलंवा श्वेतशाल्योदनस्यवा ।
पिण्डिकातत्समाक्षिप्ता श्वेतत्वंयातिसापुनः ॥३॥
श्वेतातुनिर्मलापिंडीशुद्धंचनिर्मलंपयः । तद्गा-
ङ्गंसर्वदोषघ्नं गृहीतांगंसुभाजने ॥ ४ ॥ हारीतः
(३) गाङ्गंवारिसुधासमंबहुगुणंपुण्यंसदायुःकरं
सर्वव्याधिविनाशनंबलकरंवर्ण्यं पवित्रं परम् ।
हृद्यंदीपनपाचनंसुरुचिरंमिष्टंसुपथ्यंलघु
स्वांतध्वांतनिवारिबुद्धिजननंदोषत्रयघ्नंवरम् ॥१

सामुद्रजल

(१) जो धारापात जल मैला कालिष लिये हुए हो या नीला या पीला हो और देखने में मोटा झागदार स्वादु में खारी वह समुद्र जल कहाता है यह पानी वातल कफकारक होता है खुजली रक्त दोष को करता है श्लीपद रोग को उपजाता है तथा नेत्र ज्योति को घटाता है और वीर्य्य को नाशता है ॥

धारा जलग्रहणविधिः

(२) मेघों से सदैव उत्तम जल गिरता है परन्तु जब आकाश में होकर भूमि पर आता है तो दूषित वायु तथा अन्य २ पदार्थों के मेल से विकारी हो जाता है इस से उन मेघधाराओं से गिरे हुए पानी के लेने के लिये धुले हुए मोटे चार हाथ लम्बे चौड़े कपड़े की तीन२ हाथ लम्बी चार छड़ियों के सिरे पर बांध स्वच्छ मैदान में लटका दे और उस के नीचे शिलापात्र (पत्थर का बरतन) या सुधापात्र (चूना किया हुआ कुण्ड या स्थान) या स्वच्छ कलई आदि का पात्र रख उस में ले ले पुनि पतित जल को सोना चांदी

---

(१) आविलंसमलंनीलंघनंपीतमथापि च ।
सक्षारंपिच्छिलंचैवसामुद्रंतन्निगद्यते ॥२॥
सघनंकफकृच्चैवकण्डूश्लीपदकारकम् ।
सवातलंचविज्ञेयंरक्तदोषार्त्तिकारणम् ॥ हारीतः
(२) धौतंशुद्धंसितंवस्त्रंचतुर्हस्तप्रमाणकम् ।
दण्डास्त्रिहस्ताच्चत्वारस्तुत्कोणेषुबन्धयेत् ॥१॥

तांबा स्फटिक (बिल्लौर) या कांच की शीशी या उत्तम मिट्टी के पात्र में छान के भर रक्खे और समय पर काम में लावे— यह जल विशेष कर क्वार के महीने में इकट्ठा किया जाता है जो अधिक गुणदायक होता है। वर्षा के आरम्भ का जल कभी नहीं लेना चाहिये ॥ इसी प्रकार अर्णव जल (बिना वर्षा के) भी निन्दित है।

॥ करकाजल ॥

(१) करका जल (ओलों का पानी) शीत गुण से परिश्रम को शांत करता है शोष (खुश्की) मूर्छा मोह शिरदर्द हिचकी छर्दि को दूर करता है सूजन व घाव को हित है पित्त प्रकृति वालों को विशेष गुणदायक होता है और नित्य-प्रति गुणों से संयुक्त होने से अधिक प्रशंसनीय होता है अतः इस का संग्रह करना उचित है ॥

शिलायांवासुधायांवाधौतायांपतितं च यत् ।
सौवर्णेराजतेताम्रेस्फटिकेकाचनिर्मिते ॥२॥
भाजनेमृण्मयेवापिस्थापितंधारमुच्यते ।
कांस्यपात्रेसमुद्धृत्यपरीक्षेतभिषग्वरः ॥३॥
(१)कारंशीतगुणैः श्रमोपशमनं शोषार्त्तिनिर्नाशनं
मूर्छामोहशिरोर्त्तिनाशनकरं हिक्कावमीवारणम्।
शोफानांव्रणिनांतुदोषशमनं पित्तात्मकानांहितं
शंसंतिप्रवरंगुणैःप्रतिदिनंतस्मान्नदूरेकृतम् ॥

॥ तुषार का जल (तौषार जल) ॥

(१) नदी तालाब समुद्र आदि जलाशयों में गर्मी द्वारा भाफ उठ कर ऊपर जाती है और फिर वहां धूमांश रहित हो के इकट्ठी होती है और समय पाकर पृथ्वी पर गिरती है तब उसे तुषार शिशिर पाला आदि नामों से पुकारते हैं उस तुषार से उत्पन्न जल को तौषार जल कहते हैं ।

(२) वह तुषार का पानी शीतल व हलका है श्रम पित्तजरोग वातादि दोष और जल दोषों को हरता है कोढ़ श्लीपद मकरीविष पामारोग विसर्प रोगों को नाशता है क्षीण पुरुष और क्षतशोषियों को हितकारी है अतः उन को सेवन करना उचित है ॥

॥ हैमजल ॥

(३) हिमालय आदि शीत पहाड़ों की शिखरों पर जमी हुई वर्फ गर्मी से टघल कर जो गिरती है उसे हिम कहते हैं और उस के जल को बुद्धिमान् मनुष्य हैमजल कहते हैं ॥

---

(१) अपिनद्याःसमुद्रान्ते वह्निरापस्तदुद्भवाः ।
धूपावयवनिर्मुक्तास्तुषाराख्यातु ताः स्मृताः ॥२॥
हारीतः

(२) तौषारंहिमशीतलं श्रमहरंपित्तार्त्तिशांतिप्रदं दोषघ्नांशमनं जलार्त्तिहननंसर्वामयघ्नंपरम् ।
कुष्ठश्लीपदचर्चिकाविषहरं पामाविसर्पापहं क्षीणानांक्षतशोषिणां हितकरं संसेव्यतेमानवैः॥१॥

(३) हिमवच्छिखरादिभ्यो द्रवीभूयाभिवर्षति ।
यत्तदेवंहिमंहैमंजलमाहुर्मनीषिणः ॥२॥

वर्त्तमान समय में पानी को यंत्रद्वारा जमा कर वर्फ़ बना लेते हैं और फिर उसे पानी में डाल कर हैमजल (वर्फ़ का पानी) बनाते हैं ॥ वर्फ़ का पानी देखने में घना स्वाद में मीठा होता है मूर्छा, श्रम, भ्रम रक्त पित्त को शान्त करता है और रक्त के बहाव को रोकता है तथा शान्ति को शीघ्र करने वाला होता है ॥

अथ भौम जल

अधिक पानी कूप, सारस, चौड्य, झरना, नदी, तालाब वापी और उद्भिज से हम जीवधारियों के विशेष काम में आता है अतः इन का वर्णन करना उचित है ॥

१ कौप जल

(१) पृथ्वी के थोड़े विस्तार में गोलाकार गढ़ा खोदते हैं उस में धरती के सोते से पानी निकलने लगता है तब उसे कोई पक्का और कोई वैसा ही कच्चा रखते हैं उसे कूप (कुआ) कहते हैं और उस के जल को कौप जल बोलते हैं। जिन कुओं में सोत जारी रहता है उन का जल उत्तम समझा जाता है और जिन में बहुधा बरस कर जमा हो रहता है वह दूषित जल समझा जाता है। कुए का पानी जो मीठा होता है

हैमंघनंचमधुरंच कफात्मकंचमूर्छाश्रमार्त्तिशमनं श्रमनाशनंच। पित्तासृजः प्रशमनंरुधिरक्षमं च शान्तिंकरोतिहिमसंभववारिसद्यः ॥

(१)भूमौखातोऽल्पविस्तारो गंभीरोमण्डलाकृतिः। बद्धोऽबद्धःसकूपः स्यात्तदंभःकौपमुच्यते ॥१॥

कौपंपयोयदिस्वादु त्रिदोषघ्नंहितंलघु।

वही हलका त्रिदोष नाशक एवं अग्नि और बल का वढ़ाने वाला है इस लिये मनुष्यों को अत्यन्त हितकारी होता है और खारी पानी दीपन होता है परन्तु वात कफ का नाशक और पित्त का वढ़ाने वाला है ॥

कुओं के स्वच्छ जल रखने की रीति

(१) जहां कूड़ा कर्कट घूरा इकट्ठा रहता हो ऐसी मैली गन्दी जगह में कुए न खोदे। हर एक कुए के आस पास मुंडेर और उस के चारों ओर कई फुट चौड़ी पक्की मनि होवे—

(२) कुए के मुह पर लोहे या लकड़ी की एक जाली रखना चाहिये जिस से कि हवा की रोक न हो और पत्ते लकड़ी आदि भीतर न जा सकें ॥

(३) किसी प्रकार के निकास का पानी कुए के भीतर न जाने पावे और न उस के आस पास का पानी कुए की दीवार से रिसने पावे—जैसा कि प्रायः कुए वाले उस के मैले पानी के इकट्ठे रखने को कुए के पास ही गढ़ा खोद देते हैं या उस की नाली कच्ची वना देते हैं जिस से पानी रिस २ कर भीतर जाता है ॥

(४) पत्ते या अन्य पदार्थ उस में गिर कर न सड़ने पावें—

(५) कुए के पास गढ़े या सूराख ऐसे न रहने चाहिये कि जिन में निकास या किसी और तरह का पानी जमा हो सके—

(६) पानी ऐसा स्वच्छ रस्सी या डोल से खींचा जाय कि कुआ गन्दा न होने पावे—कुए की मनि पर बैठ कर या खड़े हो कर नहाना या कपड़े धोना अनुचित है ॥

(७) कुए का पानी विगड़ता हुआ देख पड़े तो उस में मन दो मन चूने के कंकड़ डाल देना चाहिये या दश पांच

तत्क्षारंकफवातघ्नंदीपनंपित्तकृत्परम् ॥ २ ॥
आ० वि० द्र० अ० ३६

छोटी २ मछलियां छुड़वा दे और यदि कुछ स्वादु बिगड़ गया हो तो एक फुट लंबा चौड़ा आंवले की लकड़ी का खोटा कुछ दिनों के लिये डलवा देवे ऐसा करने से जल का स्वाद सुधर जाता है ॥

२ सारसजल

(१) नदी पहाड़ झरना आदि के नीचे की ओर गहरी धरती में जो पानी रुक कर सदैव भरा रहता है उसे सर या झील कहते हैं और उस के जल को सारस जल बोलते हैं ।

(२) सारसजल बलदायक है स्वादु में मीठा हलका रुचिकारक प्यास मिटाने वाला होता है तथा रूखा तुवर और मलमूत्र को बांधता है ॥

३ चौड्यजल

(३) जो गढ़ा पृथ्वी में अपने आप हो कर सोतों द्वारा नीलकण्ठी जल से भर जाता है तथा पत्थरों से पूर्ण व लता झाड़ी आदि वितानों से ढक जाता है उसे चौड्यजल कहते हैं। (यह चश्मा के भेद में है)

(४) चौड्य का जल जठराग्निवर्द्धक रूखा हलका—मीठा कफ व पित्त शमन रुचिकारक पाचन और बिशद होता है॥

---

(१) नद्याःशैलादिसंरुद्धायत्रसंस्रुत्यतिष्ठति ।
तत्सरोजलसंच्छन्नंतदम्भःसारसंस्मृतम् ॥१॥
(२) सारसंसलिलंबल्यंतृष्णाघ्नंमधुरंलघु ।
रोचनंतुवरंरूक्षंबद्धमूत्रमलंस्मृतम् ॥२॥ आ० वि० द्र० अ० ३६
(३) शिलाकीर्णंस्वयंस्वभ्रंनीलाञ्जनसमोदकम् ।
लताविताननसंच्छन्नंचौड्यमित्यभिधीयते ॥
(४) चौड्यंवह्निकरंनीरंरूक्षंकफहरंलघु ।
मधुरंपित्तनुत्रुच्यंपाचनंविशदंस्मृतम् ॥२॥
आ० वि० द० अ० ३६

४ नैर्झरजल

(१) पहाड़ों के सोतों से जो प्रवाह के साथ जल वहता है। उसे निर्झर झर प्रस्रवण और झरना कहते हैं और उस के जल को नैर्झर जल कहते हैं॥

(२) नैर्झर जल रोचक अग्निदीपक हलका मीठा परन्तु कटुपाकी व वातल होता है।

५ नादेय जल

(३) जो जल पहाड़—झील या तालाव आदि से निकल कर स्थल में वहता है उस वहाव को नद या नदी कहते हैं अतः उस जल को नादेय बोलते हैं। इन नदियों में भी प्रायः बहुत सा जल पृथ्वी से रिस २ कर आता है। गर्मी में प्रायः शीत प्रदेशीय पहाड़ी नदियों में जल वर्फ के टघलने से वह कर आता है इसी से बहुधा वह नदियां गर्मियों में उमड़ आती हैं ऐसी नदियों के लिये लोकोक्ति प्रगट है—जेठजेठी माघहेठी—बहुतेरी नदियां वरसाती होती हैं जो केवल वरसात के पानी से ही वहती हैं अन्यथा सूख जाती हैं। कोई नदी समुद्र में मिलती हैं और कोई दूसरी नदी में और बहुतेरी नदी रेत में जा कर सूख जाती हैं। नदियों के शीघ्र मन्द गति तथा पहाड़ों के निकास के अनुसार पृथक् २ गुण होते हैं॥

---

(१) शैलसानुस्रवद्वारिप्रवाहो निर्झरो झरः।
सतुप्रस्रवणश्चापि तत्रस्थं नैर्झरं जलम् ॥३॥
(२) नैर्झरं रुचिकृद्वारंकफघ्नं दीपनं लघु।
मधुरं कटुपाकञ्च वातलं स्यादपित्तलम् ॥४॥
(३) नद्यानदस्य वानीरं नादेयमितिकीर्तितम्।

(१) सामान्यतः नदी का जल रूखा वातल हलका अग्नि-वर्द्धक अनभिष्यंदी विशद कटु और कफ पित्त का हरनेवाला होता है।

(२) शीघ्रगामिनी नदियों का जल हलका और निर्मल होता है और मन्दगामिनी तथा सिवार युक्त नदियों का मैला भारी और विकारी होता है॥

विकिरजल

(३) नदी के किनारे रेती में गढ़ा खोद देते हैं उस में धीरे २ निथर कर पानी भर आता है उस की गाद जब नीचे बैठ जाय और मलिनता जो प्रायः नदियों में होती है वह स्वच्छ हो जाय तब उसे ले लेवे उस जल को विकिर जल कहते हैं (४) विकिर जल ठंडा निर्मल निर्दोष, हलका, स्वादिष्ट, तुवर, पित्तशमन होता है॥

नदियों के दूषित जल होने का कारण

(१) जो गंदगियां पृथ्वी के ऊपर या (स्वतः धरती में होती हैं) वह सारी इनमें मिल जाती हैं और जल को गंदा कर देती

---

(१) नादेयमुदकंरूक्षंवातलंलघुदीपनम्।
अनभिष्यन्दिविशदंकटुकंकफपित्तनुत् ॥१॥
(२) नद्यःशीघ्रवहालघ्व्यःसर्वायाश्चामलोदकाः।
गुर्व्यःशैवलसंच्छन्नामन्दगाःकलुषाश्चयाः ॥ २ ॥
(३) नद्यादिनिकटेभूमिर्याभवेद्वालुकामयी।
उद्घाट्यतेततोयत्तुतज्जलंविकिरंविदुः ॥३॥
(४) विकिरंशीतलंस्वच्छंनिर्दोषंलघुचस्मृतम।
तुवरंस्वादुपित्तघ्नंक्षारंतत्पित्तलंमनाक् ॥४॥
आ० त्रि० द्र० अ० ३६

हैं मेघ बरसने के पीछे ये गंदगियां अधिकतर हो कर मिट्टी के साथ पानी को अधिक गदला कर देती हैं इसी से बरसात में नदियों का पानी पीना या छोटी २ नदियों में स्नान करना आर्य्य महर्षियों ने मने कहा है ॥ यथा—

* कर्क और सिंह की संक्रांति के महीनों में (बरसात में) सब नदियां रजोवती होती हैं इस से उन का पानी नहीं पीवे केवल उन नदियों को छोड़ के जो सीधी समुद्र में मिलती हैं।

(२) प्रायः नदियों में मैला कूड़ा पड़ने से या अधजले मुर्दे या वैसे ही बहा देने से अथवा जले हुओं की राख उस में डाल देने से नदियां दूषित हो जाती हैं ॥

(३) बहुधा लोग नदियों के किनारे पाखाना फिरते हैं वह मेघ बरसने या नदी के चढ़ने से या अन्य प्रकार से नदी में जा पड़ता है कि जिस से नदियों का पानी बिगड़ जाता है। प्राचीन समय में इस का बड़ा निषेध था बलिक पाप समझते थे याज्ञवल्क्य अपने धर्मशास्त्र में लिखते हैं कि नदी के तट से ४० हाथ की दूरी पर प्रस्त्राव (पेशाब) और ४०० हाथ की दूरी पर पाखाना फिरना चाहिये धर्म शास्त्र में जल दूषित करने के अपराध में राजदंड कहा है।

(४) नदी के पानी पीने के घाट पर स्नान करने या कपड़े धोने से जल दूषित होता है ॥ अब सोचने की बात है कि बड़ी२ नदियों का जल जिनमें पानी का बहाव भी अधिक होता है इन गंदगियों से खराब हो जाता है तो छोटे २ नदी नाले या तालाब जिनमें पानी कम और धीमा चलता हो क्यों कर

---

* सिंहकर्कटयोराजन्नद्यःसर्वारजस्वलाः ।
तेषांनैवपिबेत्तोयंवर्जयित्वासमुद्रगाः ॥

न अधिक खराब हों और फिर भी लोग उन्हीं से पीने का पानी भरें ! ॥

६ ताड़ाग

(१) उत्तम भूमि में सदैव बहुत समय से जिसमें जल भरा रहता है वह तड़ाग वा ताल कहाता है अतः उस जल को ताड़ाग या तालाब कहते हैं

(२) ताल का पानी स्वादु में कसैला पाक में कटु और वातल एवं मल मूत्र का बांधने वाला होता है तथा रक्त पित्त व कफ का नाशक है। ताल के पानी के सेवन से अजीर्ण होता है और स्नान करने से शरीर खुजलाने लगता है इसी से वंग देशीय मनुष्य (जहां कि ताल का ही पानी काम में आता है) शरीर में तेल हल्दी लगा के स्नान करते हैं और अधिक तेल खाते भी हैं यदि ऐसा न करें तो उनका जीवन कठिन हो जाय अथवा आरोग्यता में बाधा पड़ जाय क्योंकि वहां तड़ाग में ही मनुष्य स्नान करते और कपड़े धोते हैं और उसी का जल पीते हैं। नदियों के समान तालाब को भी मनुष्य बिगाड़ देते हैं। स्मरण रखना चाहिये कि यदि किसी समय तालाब के बिना अन्य जल पीने को न मिले तो अवश्य औषधि द्वारा जल शुद्ध कर काम में लावें—

७ वाप्यजल ॥

(३) जिस चौड़े कूप में पत्थर व ईंट की सीढ़ियां पानी

---

(१) प्रशस्तभूमिभागस्था बहुसंवत्सरोषितः ।
जलाशयस्तड़ागःस्यात्ताड़ागन्तज्जलंस्मृतम् ॥१॥
आ० वि० द्र० अ० ३६

(२) ताड़ागमुदकंस्वादु कषायंकटुपाकि च ।
वातलंबद्धविरामूत्र मसृक्पित्तकफापहम् ॥१॥

(३) पाषाणैरिष्टकाभिर्वा बद्धकूपावृहत्तरो ।
ससोपानाभवेद्वापो तज्जलंवाप्यमुच्यते ॥ १ ॥

तक उतरने के लिये लगादेते हैं उसे वापी (बावली या बाउड़ी) कहते हैं और उस के जल को वाप्यजल कहते हैं।

(१) बावली का पानी यदि खारी होवे तो पित्तकारक व कफ नाशक होता है और मीठा होने से वातपित्त नाशक तथा कफकारक है। "शरद ऋतु में बावली का पानी अहित होता है" कुए की अपेक्षा बावली का पानी मलिन व गंदा होता है। राजपूतानादि मरुस्थलियों में इस का बड़ा प्रचार है वहां के निवासी उत्तम २ बावली जिस में भीतर अच्छे २ मकान दालान छतरी गुफा चोरखाने होते हैं सहस्रों लक्षों रुपये लगाके बनवाते हैं और उस का अधिक माहात्म्य समझते हैं यथार्थ में यह सत्य भी है क्योंकि वहां बावली न हों तो यात्रियों व निवासियों कोपानी का मिलना दुर्लभ हो जाय ॥

८ औद्भिद जल

(२) नीचे से धरती को फोड़ कर जो मोटी धार जल की निकलती है उस जल को महर्षि लोग औद्भिद जल कहते हैं।

(३) औद्भिद जल पित्त को शांत करता है अविदाही

---

(१) वाप्यंवारियदिक्षारं पित्तकृत्कफवातहृत् ।
तदेवमिष्टंकफकृत् वातपित्तहरंभवेत् ॥ २ ॥

आ० वि० द्र० अ० ३६

(२) विदार्य्यभूमिंनिम्नांय न्महत्याधारयास्रवेत् ।
तत्तोयमौद्भिदंनाम वदन्तीतिमहर्षयः ॥ १ ॥

(३) औद्भिदंवारिपित्तघ्न मविदाह्यतिशीतलम् ।
प्रीणनंमधुरंबल्य मीषद्वातकरंलघु ॥ २ ॥

अतिशीतल प्राणों का रक्षक मीठा हलका और बलदायक होता है परन्तु किंचित् वात को करता है।

(१) जो पानी रात दिन झड़ी लगकर लगातार भूमि पर बरसता है वह तुरन्त काम में लाने से अहित होता है परन्तु तीन दिन तक स्थिर होने तथा मैल मिट्टी नीचे बैठ जाने पर वही जल अमृतोपम हो जाता है॥

(२) नदी–सर–ताल–कूप–झरना आदि के जलों का गुण उपरोक्त गुणों के सिवाय प्रायः देश भेदानुसार गुणकारी होता है॥

देशभेद

जांगल अनूप और साधारण भेदों से देश तीन प्रकार का होता है॥

(३) जिस देश में जलाशय व वृक्ष उपवन थोड़े होते हैं वह जांगल देश रक्तपित्तमय होता है वहां का जल रूखा नमकीन, हलका, पतला जठराग्नि वर्द्धक तथा कफ नाशक होता है परन्तु विकारी है।

---

(१) वार्षिकंनदहर्वृष्टं भूमिस्थमहितंजलम् ।
त्रिरात्रमुषितंतत्तु प्रसन्नममृतोपमम् ॥ ३ ॥

(२) नदीसरस्तड़ागस्थे कूपप्रस्रवणादिजे ।
उदकेदेशभेदेन गुणान्दोषांश्चलक्षयेत् ॥ ४ ॥

आ० वि० द्र० अ० ३६

(३) अल्पोदकोऽल्पवृक्षश्च रक्तपित्तमयान्वितः ।
ज्ञातव्योजांगलोदेश स्तत्रत्यंजांगलंजलम् ॥ १ ॥
जांगलंसलिलंरूक्षं लवणंलघुतत्तनु ।
वह्निकृत्कफहृत्पथ्यं विकारानकुरुतेबहून् ॥ २ ॥

(१) जिस देश में जलाशय व वृक्ष बहुत होते हैं वह वात कफात्मक अनूप देश कहाता है वहां का जल अभिष्यन्दी स्वादु चिकना भारी जठराग्निवर्द्धक तथा कफकारक होता है परन्तु हृदय को हित है और अविकारी है॥

(२) जिस देश में अनूप व जांगल दोनों के चिन्ह मिलें वह साधारण देश है। उस देश का पानी मीठा, दीपन, शीतल हलका तर्पण—रुचिकारक होता है और दाह को दूर करता है और वातादि दोषों को सम रखता है॥

निन्दितजल

(३) जो जल झागदार हो या गाढ़ा हो या जिस में किसी

---

(१) बह्वम्बुर्बहुवृक्षश्च वातश्लेष्ममयान्वितः।
देशोऽनूपइतिख्यात आनूपंतद्भवंजलम्॥ ३॥
आनूपंवार्यभिष्यन्दि स्वादुस्निग्धंघनंगुरु।
वह्निकृत्कफहृद्धृद्यं विकारान्हरतेबहून्॥
(२) मिश्रचिन्हस्तुयोदेशः सहिसाधारणःस्मृतः।
तस्मिन्देशेयदुदकं तत्तुसाधारणंस्मृतम्॥ १॥
साधारणन्तुमधुरं दीपनंशीतलंलघु।
तर्पणंरोचनंतृष्णादाहदोषत्रयप्रणुत्॥ २॥
(३) पिच्छिलंक्रिमिलंक्लिन्नं पर्णशैवालकर्दमैः।
विवर्णंविरसंसान्द्रं दुर्गन्धंनहितंजलम्॥ ३॥
कलुषंछन्नमंभोज पर्णनीलीतृणादिभिः।
दुर्देशजमसंस्पृष्टं सौरचान्द्रमरीचिभिः॥ २॥
अनार्त्तवंचार्षिकन्तु प्रथमंतच्चभूमिगम्।
व्यापन्नंपरिहर्त्तव्यंसर्वदोषप्रकोपनम्॥ ३॥
आ० वि० द्र० अ० ३६

प्रकार का रंग हो या जिस के ऊपर कुछ तेल सा जान पड़ता हो या जिस में कीड़े पड़ गए हों या पत्ते सिवार कीचड़ आदि दुर्गन्धित वस्तुएं मिली हों या जिस का रंग बिगड़ गया हो या स्वादु नष्ट हो गया हो या लसदार हो या दुर्गन्ध आती हो ऐसा जल अच्छा नहीं होता—अथवा जिस जल में कांसा तांबा पीतल आदि धातु के बरतन डालने से रंग बदल जाय या जो जल कमल के पत्ते यानी जलतृण आदि से ढका रहता हो और बुरे स्थान में हो या जिस पर सूर्य चन्द्रमा की किरणें न पड़ती हों या जो अनार्त्तव (विना वर्षा ऋतु के) महीनों का वर्षा हुआ हो ॥ अथवा वर्षा ऋतु का पहिला पानी (नया जल) हो ये जल निन्दित कहाते हैं ॥

(१) उन उपरोक्त जलों को त्याग देवे क्योंकि ये सब प्रकार के जल बातादि दोषों को कुपित करते हैं इन में स्नान करने से त्वचा के रोग खुजली कोढ़ विसर्प आदि हो जाते हैं और गण्डादिक नहरुआ आदि रोग होने की सम्भावना रहती है तथा इन के पीने से प्यास अधिक लगती है पेट फूलता और बढ़ता है मन्दाग्नि हो जाती है और तरह २ के प्राकृतिक ज्वर (मलेरियाफ़ीवर) और खांसी को उपजाते हैं ॥

(२) इन दूषित जलों में स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वीर्य्य और विपाक में छः दोष पाये जाते हैं ॥

---

(१)तत्कुर्य्यात्स्नानपानाभ्यांतृष्णाध्मानोदरज्वरान्।
कासाग्निमांद्याभिष्यंद्यकण्डूगण्डादिकंतथा ॥१॥
स्नानेनत्वग्भवान्रोगान्कण्डूकुष्ठविसर्पकृत्।
(२) तस्यस्पर्शरूपरसगन्धवीर्य्यविपाकदोषाः।
षट्सम्भवन्ति सु० सू० अ० ४५

स्पर्शदोष

(१) तीक्ष्णता रूक्ष उष्णता शीतलता (जिस से दांत जकड़ जांय) ये स्पर्श दोष हैं ॥

रूपदोष

(२) कीचड़-बालू-सिवार और कई प्रकार के रङ्ग होजाना ये जल में रूप दोष कहाते हैं ॥

रसदोष

(३) जिस का रस प्रगट हो गया हो वह रसदोष है ॥

गन्धदोष

(४) जल में अप्रिय गन्ध का होना गन्धदोष कहाता है ॥

वीर्य्यदोष

(५) जो जल पीने से प्यास को बढ़ावे भारी हो पेट में दर्द करै कफ और प्रसेक पैदा करै वह वीर्य्यदोष कहाता है ॥

विपाकदोष

(६) जो जल पीने के बाद देर में पचे पेट में भरा हुआ जान पड़े गुड़गुड़ाहट करे तो उस में विपाकदोष समझ लेवे ॥

---

(१) तत्रखरतापैच्छिल्यमौष्ण्यंदन्तग्राहिताच स्पर्शदोषाः ॥

(२) पङ्कसिकताशैवालबहुवर्णतारूपदोषाः।

(३) व्यक्तरसतारसदोषः।

(४) अनिष्टगन्धतागन्धदोषः।

(५) यदुपयुक्तंतृष्णागौरवशूलकफप्रसेकानापादयतिसवीर्य्यदोषः।

(६) यदुपयुक्तंचिराद्विपच्यतेविष्टम्नातिवासविपाकदोष इति॥ सु० सू० अ० ४५

जल को शुद्ध करने की रीति ॥

(१) निन्दित जल को ले कर अग्नि पर खूब औटावे फिर उतार कर निथार कर ले जिस से निमक आदि भारी वस्तुएं बर्तन की तली में बैठ जांय अथवा धूप में तपाय ले ॥

(२) अथवा सोना चांदी लोहा पत्थर का टुकड़ा वालू आदि को खूब आंच में गर्म कर उस पानी में सातवार बुझाय दे पुनि ठण्डा होने पर उस में कपूर चमेली पुन्नाग पाटला आदि की सुगन्ध दे देवे जिस से दोष रहित हो जाता है ॥

(३) अथवा उजले मोटे गीले कपड़े से कई बार छान ले कि जिस से क्षुद्र जन्तु रहित हो कर शुद्ध हो जाता है या निर्मली गोमेदकमणि कमल की तन्तु शेवाल मोती या मणि उस में डाल दे। यदि बरसात आदि में कूप बावली नदी का जल मैला या दूषित हो जाय तो निम्नलिखित उपायों से उस का शोधन कर लेवे—साधारण दशा में भी यह शोधन करने से जल हितकारी हो जाता है ॥

(१) पानी में किंचित् फटकरी पीस कर डाल देवे ॥

(२) निर्मली घिस दे ॥

(३) हीराकसीस पीस कर डाल दे ॥

(४) बादाम की गरी घिस कर डाल दे फिर निथार कर मोटे कपड़े से कई बार छान ले ॥

---

(१) निन्दितंचापिपानीयंक्वथितंसूर्य्यतापितम् ।
(२) सुवर्णरजतंलोहंपाषाणंसिकतामपि ।
भृशंसन्ताप्यनिर्वाप्यसप्तधासाधितंतथा ॥
कर्पूरजातिपुन्नागपाटलादिसुवासितम् ।
(३) शुचिसान्द्रपटस्त्राविक्षुद्रजन्तुविवर्जितम् ॥
तत्रसप्तकलुषस्यप्रसाधनानिभवन्तितद्यथा ॥
कतकगोमेदकविसग्रन्थिशैवालमूलवस्त्राणि
मुक्तामणिश्चेति ॥ सु० सू० अ० ४५

(५) पानी को उबाल कर या टपका के काम में लावे ॥

(६) गन्धक का ढेला पानी में पड़ा रहने दे ॥

(७) अथवा डाक्टरी रीति से टपका ले इस रीतिको फिलटर कहते हैं ॥

फिलटर के बनाने की रीति

(८) बांस या लकड़ी की तिकोनी चार मञ्जल की तिपाई बनाकर उस पर घड़े रख दे प्रथम ऊपर के घड़े में गरम पानी भर दे और दूसरे घड़े में पत्थर का दरदरा कोयला और तीसरे में बालू और चौथा खाली रक्खे—कोई २ तीन ही घड़े काम में लाते हैं इन घड़ों की तली में पानी टपकाने के लिये छेद कर जिस से बूंद २ कर पानी टपक आवे पुनि सब से नीचे के घड़े का शुद्ध पानी काम में लावे यह शुद्ध निर्मल ठंडा गुणकारी होता है।

शुद्ध जल की पहिचान ॥

(१) जिस में दुर्गन्ध न आती हो और रस का स्वादु छिपा हो शीतल हो निर्मल हो हलका हो हृद्य हो और पीने से प्यास को बुझावे ऐसा जल गुणदायक होता है ॥

ऋतु अनुसार पानी का पीना ॥

(२) हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में सर और ताल का

---

(१) अगन्धमव्यक्तरसं सुशीतंतर्षनाशनम् ।
स्वच्छंलघुचहृद्यंच तोयंगुणवदुच्यते १ सु० सू० अ० ४५

हेमन्तेसारसंतोयं ताड़ागंवाहितं स्मृतम् ।
हेमन्तेविहितंतोयं शिशिरेपिप्रशस्यते ॥ १ ॥
वसन्तग्रीष्मयोःकौपं वाप्यंवानैर्झरंजलम् ।
नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः ॥२॥
विषवद्वनवृक्षाणां पत्राद्यैर्दूषितंयतः ।
औद्भिदंवान्तरिक्षंवा कौपंवाप्रावृषिस्मृतम् ।
शस्तंशरदिनादेयं नीरमंशूदकंपरम् ॥ ३ ॥

पानी श्रेष्ठ और हित होता है वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में कूए व बावली या झरने का पानी अच्छा है परन्तु नदी का पानी वृक्षों के पत्ते फल फूल आदि के गिरने सड़ने से विषवत् होजाता है अतः वैद्य लोग इन ऋतुओं में उस का जल पीने को निषेध करते हैं। वर्षा ऋतु में कुण्ड का या औद्भिद जल या अन्तरिक्ष का जल बहुत अच्छा होता है शरद ऋतु में नदी का पानी या अंशूदक (हंसोदक) पानी श्रेष्ठ होता है॥

अंशूदकपानी

(१) प्रातःकाल एक घड़ा में जल भर कर धूप में रख दो और बहुत बारीक झिरझिरे कपड़े से उस का मुंह बांध दो पुनि रात के समय वैसा ही वहां ही रहने दो दूसरे दिन छान कर काम में लाओ और इसी प्रकार नित बनाते जाओ॥ यह जल सूर्य्य की किरणों से तपा हुआ और चन्द्रमा की किरणों से या अधःपतित ओस के अणुमात्रों से शीतल हुआ जल अंशूदक या हंसोदक कहाता है जिसे बोल चाल में आंसूद जल कहते हैं यह स्निग्ध अमृतोपम तीनों दोषों का शमन कारक अनभिष्यन्दी निर्दोषल आकाशीय धारा जल के समान बलदायक रसायन बुद्धिवर्द्धक शीतल और हलका होता है॥ ये उपरोक्त जल शुद्ध करने से गुणकारी होते हैं परन्तु स्वाभाविक गुणदायक सब ऋतुओं में काम लाने योग्य अमृतोपम

---

(१) दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकराऽम्बुभिः।
ज्ञेयमंशूदकंनाम स्निग्धंदोषत्रयापहम्॥ १॥
अनभिष्यन्दिनिर्दोष मांतरिक्षजलोपमम्।
बल्यंरसायनंमेध्यं शीतंलघुसुधासमम्॥ २॥
सु० सू० अ० ४५

जल श्रीगङ्गा जी का जल है जिस का गुण अकथनीय है जो मनुष्य नियम के साथ सदैव श्रीगङ्गाजल का साधन रखते हैं उन के कोई रोग उत्पन्न नहीं होते (गङ्गाम्भःसर्वकालेसकलमल हरंव्याधिविध्वंसिपुण्यम्) तथा कैसा ही दुश्चिकित्स्य रोग क्यों न हो गया हो उस जल के पान करने से नष्ट हो जाता है एक अच्छे महात्मा का बचन है यथा—शरीरेजर्जरीभूतेव्याधि ग्रस्तेकलेवरे— औषधंजान्हवीतोयंवैद्योनारायणोहरिः ॥ कि जब शरीर जर्जरीभूत हो जाय और रोग से ग्रसित हो जाय उस समय श्रीगंगाजल ही औषध और नारायण हरि वैद्य हैं अर्थात् एक अच्छे अमेरिकन् डाक्टर ने पृथ्वी के समस्त जलों की परीक्षा करके लिखा है कि श्रीगंगा जी के जल में समस्त रोगों के कीड़े डालने से मरजाते हैं। अर्थात् उस जल के सेवन से कोई रोग बढ़ने नहीं पाता वल्कि निर्मूल हो जाता है। अंगरेजी डाक्टरों का सिद्धान्त है कि समस्त रोगों के कीड़े होते हैं वह जब मनुष्य के शरीर में घुस जाते हैं तभी वह रोग उत्पन्न होते हैं॥ नारायण ने यह औषधि बताई है॥ नारायण की वताई हुई यह केवल औषधि है जो अंत्य समय के भी दुस्सह रोगों को हटाती है इसी गुण के कारण अब भी भारत वासी लोग अन्त्य समय पर श्रीगङ्गाजल देते हैं जिस से कफ कास श्वास नहीं बढ़ते यथार्थ में श्रीगंगाजल का गुण वर्णन करना लेखनी की शक्ति से वाहर है क्योंकि स्नान पान करने से सब प्रकार पवित्र है तथा नये पुराने असाध्य रोगों के लिये तो यह एक परमौषधि है॥

जलपानविधि

(१) सच्ची प्यास लगने पर पानी पीना अच्छा है।

(२) प्यास लगने पर जो मनुष्य पानी न पी कर भोजन

---

(२) तृषितस्तुनचाश्नीयात् क्षुधितोनपिबेज्जलम्॥
तृषितस्तुभवेद्गुल्मी क्षुधितस्तुजलोदरी ॥ १ ॥

करते हैं उन के गुल्म रोग उत्पन्न हो जाता है इसी प्रकार अतिभूंख लगने पर जो विना कुछ खाये पानी पीते हैं उनके जलोदर (जलंधर) रोग हो जाता है ॥

(३) सो के उठ कर तुरन्त पानी पीने से प्रतिश्याय (जु.काम) हो जाता है ।

(४) राति में उठ २ कर पानी पीने से भी प्रतिश्याय होता है ॥

(५) खरबूजा, तरबूज, अमरूद, खीरा ककरी मूली इत्यादि फलों पर पानी पीना मानों खांसी अजीर्ण और अतीसार को शरीर में स्थान देना है बच्चों के लिये तो बहुत ही बुरा है ।

(६) दूध मलाई मक्खन आदि पर पानी पीने से कास श्वास हो जाती है ॥

(७) परिश्रम से थका हुआ मनुष्य जो बहुत पानी पीले तो उस के गुल्म तथा शूल रोग की उत्पत्ति हो जाती है ॥

(८) कसरत करने के उपरान्त या पसीना आते के समय तुरन्त पानी पीने से नाड़ियां निस्तेज और शिथिल हो जाती हैं ।

(९) मैथुन के उपरान्त पानी पीने से अण्डवृद्धि होने का डर रहता है ॥

(१०) मार्ग से श्रमित भूख से पीड़ित और शोकित, क्रो- तथा विषमासन बैठ के पानी पीने से रोगी हो जाता है ॥

(११) सूर्य्यास्त समय पानी पीना भी मना है ॥

---

(७) करोतिगुल्मंशूलंवा तथाश्रान्तेबहूदकम् ।
(१०) अध्वश्रान्तक्षुधाक्रान्ते शोषक्रोधातुरेषुच ।
विषमासनोपविष्टेच पीतंवारिरुजाकरम् ॥१॥
हा० अ०७

थोड़ा पानी पीना ॥

(१) जुकाम-प्रसेक-ज्वर-कोढ़-फोड़ा-शोथ नेत्ररोग-मन्दाग्नि क्षय-प्रसूति-रक्तस्राव (लोहू के निकल जाने पर या फस्त के पीछे) अरुचि-मधुप्रमेह (जिस के मूत्र को चींटी चींटे पीते हैं या मक्खी बैठती हैं) इन रोगों में अधिक पानी पीने से रोग की वृद्धि होती है अतः थोड़ा पानी पीना हित होता है ॥

शीत जलपान ॥

(२) मूर्छा-पित्त की उष्णता-दाह-विषपान मदात्यय (नशा से पीड़ित) रक्तविकार परिश्रम से श्रमित-भ्रम-विदग्ध अन्न (भोजन के कुपच में धुआं सा डकार आवे) तमक श्वास-जी मचलाना-ऊर्द्धगरक्त पित्त (नाक या मुंह से लोहू का गिरना) इन रोगों में शीतल पानी पीना उचित है ॥

---

(१) प्रतिश्यायप्रसेके च ज्वरे कुष्ठे व्रणेषु च ।
शोफे नेत्रामये चैव मन्दाग्नौ च तथा क्षये ॥१॥
प्रसूतिजातासृतानारी रक्तस्रावेऽप्यरोचके ।
एतेषां सिद्धिमिच्छद्भिः पानीयं मन्दमाचरेत् ॥२॥

हा० अ० ३

(२) मूर्छापित्तोष्णदाहेषु विषेरक्ते मदात्यये ।
श्रमे भ्रमे विदग्धेऽन्ने तमके वमथे तथा ॥२॥
ऊर्द्धगे रक्तपित्ते च शीतमम्बु प्रशस्यते ॥३॥

उष्णजल पान ॥

(१) पसली के दर्द में—जुकाम में—वात रोग में गले के दर्द में पेट फूलने में वद्धकोष्ट में वमन विरेचन में नये ज्वर में अरुचि में ग्रहणी में—गुल्म में कास स्वास में विद्रधि में हिचकी में तथा घी तेल आदि के सेवन में गर्म जल पीने को देवे—

गर्म जल करने की विधि ॥

(२) पानी को औटावे जब खौलने लगे तब उतार ले और स्थित होने पर देखे कि फैन बैठ गया तथा मैल मिट्टी नमक आदि के कण पात्र की तली में बैठ के जल निर्मल हो गया तो उसे निथार कर दूसरे पात्र में कपड़े से छान लेवे और कुछ नीचे का छोड़ दे ॥

(३) औटा कर जो पानी धारापात से अर्थात् धार बांध कर एक दूसरे पात्र में छोड़ कर ठंडा करते हैं वह पानी विष्टंभ (कब्ज़) करता है अतः कठिनता से पचता है परन्तु वात हर होता है और जो पात्र में रक्खा हुआ स्वतः ही शीतल

---

(१) पार्श्वशूलेप्रतिश्यायेवातरोगेगलग्रहे ।
आध्मानेस्तिमितेकोष्टे सद्योऽशुद्धौनवज्वरे॥१॥
अरुचिंग्रहणीगुल्म स्वासकासेषुविद्रधौ ।
हिक्कायांस्नेहपानेच शीतांम्बुपरिवर्जयेत् ॥२॥

हा० अ० ७

(२) क्वाथ्यमानंचनिर्वेगं निष्फेनंनिर्मलंचयत् ।
(३) धारापातेनविष्टंभि दुर्जरेपवनापहम ॥१॥

होजाता है वह त्रिदोष शमन होता है और विशेष कर कफ की शान्ति करता है ॥

(१) दिन का औटाया हुआ पानी रात को पीने से भारी हो जाता है इसी प्रकार रात्रि का औटाया हुआ दिन में पानी पीने से भारी हो जाता है अर्थात् वह पानी ४ पहर पीछे विकारी हो जाता है पीने योग्य नहीं रहता क्योंकि औटाने से आरोग्योदक जल पानी के कीड़े मर जाते हैं वह चार पहर पीछे सड़ने लगते हैं ॥

(आरोग्य जल)

(२) हारीत मुनि लिखते हैं कि जो पानी औटाते २ चौथाई शेष रह जावे वह आरोग्योदक कहाता है यह जल पथ्य है कासस्वास वात को हरता है नये ज्वर को शीघ्र पचाता है मेदारोग और कफके रोगों को दूर करता है जुकाम को पकाता है शूल गुल्म ववासीर को नष्ट करता है जठराग्नि को प्रबल करता है पाण्डुरोग शोथरोग उदर व्याधि को हरता है अतः इन रोगों में यह जल अवश्य पीना चाहिये ॥

शृतशीतंत्रिदोषघ्नं कफांतभ्रमिशीतलम् ।
(१) दिवसेक्कथितंतोयं रात्रौतद्गुरुवर्जयेत् ॥२॥
रात्रौशृतंतुदिवसे गुरुत्वमधिगच्छति ॥
(२) पादशेषंतुक्कथितंतच्चारोग्यजलंविदुः ।
कासस्वासहरेपथ्यंमारुतं चापकर्षति ।
उद्यौ ज्वरं हरत्याशुमेदःकफनाशनम् ॥
तिश्यायंपाचयति गुल्मशूलार्शनाशनम् ।
दीपनंचहुताशस्यपाण्डुशो फोदरापहम् ॥

(१) अजीर्ण में रात्रि को गर्म जल पीने से तुरंत हीं अजीर्ण मिटजाता है

(२) औटाने में चौथाई जला हुआ पानी वात को हरता है तथा हेमंत ऋतु में भी हित होता है इसी प्रकार अर्द्धाविशेष पानी पित्त के विकार को नाशता है यह । शिशिर व वसंत ऋतुओं में भी हितकारी होता है इसी भांति तीन भाग जला हुआ पानी कफ के दोषों को नाशता है यह शरद् और ग्रीष्म ऋतुओं में पथ्य होता है ॥

जल ग्रहण काल

(३) कूपताल नदी आदि का जल प्रातःकाल शीतल व निर्मल होने से अधिक गुण दायक होता है अतः उस समय ग्रहण करना श्रेष्ठ होता है ॥

जल को शीतल करना ॥

(४) प्रवातस्थापनम् (वायु में स्थापित करना

---

(१) अजीर्णे चजरत्याशुपीतमुष्णोदकंनिशि ॥

(२) तत्पादहीनंवातघ्नं चार्द्धं पित्तविकारजित्।
कफघ्नंपादशेषंतुपानीयं लघुपाचनम् ।
शारदेचतथा ग्रीष्मे क्वथेत्पादावशेषितं ।
शिशिरे चवसंतेचकुर्यादर्द्धविशेषितम्।

(३) भौमानामंभसांप्रायो ग्रहणंप्रातरिष्यते।
शीतत्वंनिर्मलत्वंचयतस्तेषांमतोगुणः
हारी०अध्या०७

(४) सप्तशीती करणानि भवंति

(२) उदकप्रक्षेपणम् (पानी को हिलाना)

(३) यष्टिकाभ्रामणम् (पानी में लाठी को घुमाना अर्थात् मथना)

(४) व्यजनम् (व्यजन-बिजना से पवन करना)

(५) वस्त्रोद्धरणम् (पानी के ऊपर स्थापित किये हुये वस्त्र को दूर करना)

(६) वालुकाप्रक्षेपणम् (पानी में बालू रेत का डालना

(७) शिक्यावलम्बनम् (पानी के घड़े को सीके आदि में लटका कर हवा में स्थापित करना)

इत्यलं शुभमस्तु । श्रीरस्तु ॥

संकेतार्थ ॥

सु० सू० अ०—सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय ।

सु० चि० अ०—सुश्रुत चिकित्सा स्थान अध्याय ।

सु० क० अ०—सुश्रुत कल्पस्थान अध्याय ।

सु० शा० अ०—सुश्रुत शारीरिक स्थान अध्याय ।

वा० सू० अ०—वाग्भट्ट सूत्रस्थान अध्याय ।

या० व०—याज्ञवल्क्य ।

आयु० वि० सू० अ०—आयुर्वेद विज्ञान सूत्रस्थान अध्याय ।

आ० वि० द्र०—आयुर्वेद विज्ञान द्रव्यस्थान ।

हा० अ०—हारीत अध्याय ।

म० अ०—मनुस्मृति अध्याय ।

प्रवातस्थापनमुदकप्रक्षेपणं यष्टिकाभ्रामणं
व्यजनं वस्त्रोद्धरणं वालुकाप्रक्षेपणं
शिक्यावलंबनंचेति ॥ सु० सू० अ० ४५

गमन वेश्यागमन मठा पीने के अवगुण ऋतु समय स्त्री आचरण उत्तम पुत्र या श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न करने की विधि अंधे गूगे बहरे दुष्ट अन्यायी नपुंसक संतान होने के कारण यमलोत्पत्ति का हेतु गर्भवती होने के चिन्ह कन्या या पुत्रगर्भ की पहचान गर्भिणी कृत्य गर्भिणी के विशेष नियम गर्भरक्षा प्रसूति समय बालक की रक्षा बालच्छेदन विधि दूध पिलाने की विधि बालरक्षा धात्रीशिक्षा दूषितदूध की पहचान बाल रोगों की चिकित्सा प्रकाश की आवश्यकता दीपविधि शरीर के अंग और उन की रक्षा वेगों के रोकने के अवगुण घर बनाने की रीति स्थान की स्वच्छता ऋतुचर्य्या शारीरिक शिक्षा आत्मिक शिक्षा सांसारिकशिक्षा सामाजिक शिक्षा आदि विषय अच्छे प्रकार वर्णन किये गये हैं ॥